वीर ज्ञानोदय ग्रन्थमाला का पुष्प नं. 429
ISBN-978-93-84003-21-0

श्री गौतम गणधर वाणी

श्री गौतम स्वामी प्रणीत

–संकलन एवं पद्यानुवाद –

**जैन समाज की सर्वोच्च साध्वी, दिव्यशक्ति,
दो बार डी.लिट्. की मानद उपाधि से अलंकृत
परमपूज्य गणिनीप्रमुख आर्यिकाशिरोमणि
श्री ज्ञानमती माताजी**

श्रावण कृष्णा प्रतिपदा (13 जुलाई 2014) को श्री गौतम गणधर स्वामी के 2571 वें 'गणधर दिवस' पर चारित्रचन्द्रिका परम पूज्य गणिनीप्रमुख आर्यिका शिरोमणि श्री ज्ञानमती माताजी द्वारा घोषित ''श्री गौतमगणधर वर्ष'' (2014–2015) के उद्घाटन अवसर पर प्रकाशित

-प्रकाशक-

दिगम्बर जैन त्रिलोक शोध संस्थान

जम्बूद्वीप-हस्तिनापुर (मेरठ) उ.प्र.फोन नं.- (01233) 280184, 280994
Website : www.jambudweep.org www.encyclopediaofjainism.com
E-mail : jambudweeptirth@gmail.com
Facebook : jaintirthjambudweep

प्रथम संस्करण	श्रावण कृ. प्रतिपदा वीर नि. सं. 2540	मूल्य
2571 प्रतियाँ	13 जुलाई 2014	24/-रु.

दिगम्बर जैन त्रिलोक शोध संस्थान द्वारा संचालित

वीर ज्ञानोदय ग्रन्थमाला

इस ग्रन्थमाला में दिगम्बर जैन आर्षमार्ग का पोषण करने वाले हिन्दी, संस्कृत, प्राकृत, कन्नड़, अंग्रेजी, गुजराती, मराठी आदि भाषाओं के न्याय, सिद्धान्त, अध्यात्म, भूगोल-खगोल, व्याकरण आदि विषयों पर लघु एवं वृहद् ग्रंथों का मूल एवं अनुवाद सहित प्रकाशन होता है। समय-समय पर धार्मिक लोकोपयोगी लघु पुस्तिकाएं भी प्रकाशित होती रहती हैं।

–: संस्थापिका एवं प्रेरणास्रोत :–

परमपूज्य गणिनीप्रमुख आर्यिकाशिरोमणि श्री ज्ञानमती माताजी

(दो बार डी.लिट्. की मानद उपाधि से अलंकृत)

–: मार्गदर्शन :–

प्रज्ञाश्रमणी आर्यिका श्री चन्दनामती माताजी

(पीएच.डी. की मानद उपाधि से अलंकृत)

–: निर्देशक एवं सम्पादक:–

कर्मयोगी पीठाधीश स्वस्तिश्री रवीन्द्रकीर्ति स्वामीजी

–: प्रबंध सम्पादक :–

जीवन प्रकाश जैन

सर्वाधिकार प्रकाशकाधीन

कम्पोजिंग - ज्ञानमती नेटवर्क
जम्बूद्वीप-हस्तिनापुर (मेरठ) उ.प्र.

विषयानुक्रमणिका

क्र.सं.	प्रस्तावना विषय सूची	पृष्ठ सं.
१.	संपादकीय	४
२.	प्रस्तावना	५
३.	दो शब्द	६
४.	श्री गौतम स्वामी प्रणीत कृतियों का परिचय	७
५.	महत्त्वपूर्ण प्रेरणा	८

ग्रंथ विषय सूची

क्र.सं.	पृष्ठ सं.	क्र.सं.	पृष्ठ सं.
१. श्री गौतमस्वामी पूजा	१	१०. पडिक्कममि भंते !	६१
२. मंगलाचरण	५	११. इच्छामि भंते !	६४
३. चैत्यभक्ति	६	१२. वीरभक्ति	६७
४. कृतिकर्म विधि	१९	१३. अन्त्य प्रार्थना	७१
सामायिक दण्डक	२०	१४. प्रशस्ति	७२
थोस्सामि स्तव	२३	१५. श्री गौतमस्वामी परिचय	७४
लघु सिद्धभक्ति	२६	१६. श्री गौतमस्वामी प्रणीत प्रतिक्रमण पाठ में परिवर्तन–परिवर्धन उचित नहीं है	८०
५. सुदं मे आउस्संतो ! (श्रावक धर्म)	२९		
६. एकादश प्रतिमा	३५		
७. निषीधिका दण्डक	४१	१७. पाठ परिवर्तन का चार्ट	८४
८. गणधरवलय मंत्र	४६	१८. श्री गौतम स्वामी की मंगल आरती	८७
९. सुदं मे आउस्संतो ! (मुनिधर्म)	५५	१९. भजन	८८
२८ मूलगुण	५६		
पच्चीस भावना	५७		

सम्पादकीय

पीठाधीश स्वस्ति श्री रवीन्द्रकीर्ति स्वामी

मंगलं भगवान वीरो, मंगलं गौतमो गणी।
मंगलं कुंदकुंदाद्यौ, जैनधर्मोऽस्तु मंगलम्।।

भगवान महावीर स्वामी हम सभी का मंगल करें। श्री गौतम गणधर स्वामी हम सभी का मंगल करें। श्री कुंदकुंद आदि पूर्वाचार्य हम सभी का मंगल करें और जैनधर्म हम सभी के लिए मंगलकारी होवे।

इस एक मंगलाचरण में श्री महावीर स्वामी से लेकर परम्परागत सभी पूर्वाचार्यों की स्तुति की गई है। आज हम सभी का परम सौभाग्य है कि हमें भगवान महावीर की साक्षात् वाणी को पढ़ने–सुनने का सौभाग्य प्राप्त हो रहा है। तीर्थंकर की परम्परा, गणधर की परम्परा, चतुर्विध संघ–मुनि–आर्यिका, क्षुल्लक–क्षुल्लिका (श्रावक–श्राविका) की परम्परा अनादि है। यह अनादि काल से चली आ रही है और अनंतकाल तक चलती रहेगी।

वर्तमान में बीसवीं शताब्दी में परम पूज्य गणिनीप्रमुख श्री ज्ञानमती माताजी का हम सभी पर परम उपकार हैं, जो कि हमें नित्य नई–नई बातों से, प्राचीन रहस्यों से अवगत कराती हैं। इनके जीवन का हरपल नई–नई कृतियों को, नई–नई रचनाओं को लिए रहता है। जिनकी लेखनी में, वाणी में सरस्वती का वास है तभी तो षट्खण्डागम सूत्र ग्रंथ की १६ पुस्तकों पर संस्कृत टीका लिखकर जैनसमाज को एक महान कृति प्रदान की है। अष्टसहस्री जैसे क्लिष्ट ग्रंथ का हिन्दी अनुवाद किया है। ४०० ग्रंथों की रचना की है। जिनमें अभी कई ग्रंथ अप्रकाशित हैं। आज सारे विश्व में जिनके द्वारा रचित इन्द्रध्वज, कल्पद्रुम, सर्वतोभद्र आदि विधानों की धूम मची है।

जिन्होंने चारों अनुयोगों का तलस्पर्शी ज्ञान प्राप्त करके जैन भूगोल–जम्बूद्वीप, तेरहद्वीप एवं तीनलोक की रचना को धरती पर साकार किया है। जिनकी प्रेरणा एवं आशीर्वाद से मांगीतुंगी सिद्धक्षेत्र पर १०८ फुट उत्तुंग ऋषभदेव की प्रतिमा का निर्माण कार्य तेजी से चल रहा है। भगवान का चेहरा (मुख) का कार्य पूर्ण होने वाला है।

प्रस्तुत पुस्तक 'श्री गौतम गणधर वाणी' पूज्य माताजी की एक अमूल्यकृति है। इसकी वाचना अभी हस्तिनापुर में वीर सं. २५४० चैत्र शु. ग्यारस से प्रारम्भ करके ज्येष्ठ वदी पंचमी को पूर्ण हुई है। जिनवाणीरूपी अमृत का पान कराने वाली यह 'श्री गौतम गणधर वाणी' आप सभी के जीवन में मंगलकारी हो, यही मंगलभावना है। वीर ज्ञानोदय ग्रंथमाला दिन दूनी रात चौगुनी वृद्धि करे, यही जिनेन्द्रदेव से मंगल प्रार्थना है।

प्रस्तावना

प्रज्ञाश्रमणी आर्यिका चन्दनामती

जैनधर्म के चौबीसवें तीर्थंकर भगवान महावीर स्वामी के प्रथम गणधर श्री गौतमस्वामी हुए हैं। चूँकि यह नियम है कि गणधर के अभाव में तीर्थंकर की दिव्यध्वनि नहीं खिरती अतः भगवान महावीर स्वामी को जब केवलज्ञान होने के ६६ दिन तक दिव्यध्वनि नहीं खिरी तब सौधर्म इन्द्र को चिन्ता हुई तब वे वेश बदलकर वेद–वंदागों में पारगंत ब्राह्मण श्री इन्द्रभूति गौतम के पास गए और उनसे प्रश्न किया–कि मुझे एक श्लोक का अर्थ समझ में नहीं आ रहा है, मेरे स्वामी इस समय मौन हैं, अतः आप उसका अर्थ बताए। तब गौतम गोत्रीय इन्द्रभूति ने कहा—आप अपना श्लोक बताइए मैं उसका अर्थ करूँगा। सौधर्म इन्द्र ने श्लोक पढ़ा–

''धर्मद्वयं त्रिविधकालसमग्रकर्म, षड्द्रव्यकायसहिताः समयैश्च लेश्याः।
तत्त्वानि संयमगती सहितं पदार्थै–रंगप्रवेदमनिशं वद चास्तिकायं।।''

श्री इन्द्रभूति ब्राह्मण को उसका अर्थ समझ में नहीं बताया, तब उन्होंने कहा चलो मैं तुम्हारे गुरु के सामने ही इसका अर्थ बताऊँगा। इन्द्र तो यही चाहते थे उन्होंने कहा–ठीक है और वे उन्हें भगवान महावीर के समवसरण में ले गए जहाँ पर सर्वप्रथम मानस्तम्भ का दर्शन करते ही उनका मान गलित हो गया। उनका मिथ्याज्ञान सम्यग्ज्ञान में परिवर्तित हो गया। समवसरण में भगवान महावीर स्वामी का दर्शन करते ही उनके मुख से सर्वप्रथम भगवान के गुणगान में चैत्यभक्ति प्रस्फुटित हुई–

जयति भगवान्! हेमाम्भोज–प्रचार–विजृंभिता।
वमरमुकुटच्छायोद्–गीर्णप्रभापरिचुम्बितौ।।

इत्यादि रूप से ३५ श्लोकों में स्तुति की है। उन्होंने भगवान महावीर स्वामी के समवसरण में दीक्षा ले ली, उसी समय उन्हें अवधिज्ञान, मनःपर्ययज्ञान प्रगट हो गया और वे भगवान के प्रथम गणधर हो गए। वह दिन श्रावण कृष्णा एकम् का था, बस भगवान की दिव्यध्वनि खिरने लगी जिसे श्री गौतम गणधर स्वामी ने गूंथा, उसे अन्तर्मुहूर्त अर्थात् ४८ मि. के अन्दर द्वादशांगरूप में रचना कर दी। भगवान महावीर अर्थकर्ता और श्री गौतम गणधर स्वामी ग्रंथकर्ता माने गए हैं। आज जितना भी उपलब्ध शास्त्र है सब द्वादशांग का अंशरूप है।

प्रस्तुत पुस्तक 'श्री गौतम गणधर वाणी' में जैन समाज की सर्वोच्च साध्वी चारित्र चन्द्रिका, दिव्यशक्ति, युगप्रवर्तिका, आर्यिका शिरोमणि परम पूज्य गणिनीप्रमुख श्री ज्ञानमती माताजी ने संकलन किया है। इसमें पद्यानुवाद पूज्य माताजी द्वारा रचित है हिन्दी अनुवाद पं. श्री पन्नालाल जी सोनी सिद्धान्त शास्त्री व्यावर द्वारा अनुवादित 'यति प्रतिक्रमण' पुस्तक से लिया है। पूज्य माताजी दीर्घायु हों, स्वस्थ रहें और हम सभी को दीर्घ समय तक अपनी अमृतमयी वाणी से सिंचित करती रहें, यही जिनेन्द्रदेव से मंगल प्रार्थना है।

दो शब्द

संघस्थ–आर्यिका सुव्रतमती

मंगलं स्यान्महावीरो, श्री गौतमश्च मंगलम्।
जिन शासनमाचंद्रं, स्थेयात् कुर्याच्च मंगलम्।।

भगवान महावीर के शासनकाल में बीसवीं सदी में मुनि परम्परा को जीवन्त करने वाले युगप्रवर्तक चारित्रचक्रवर्ती प्रथमाचार्य श्री शांतिसागर जी महाराज हुए हैं। उनके ३ बार दर्शन करने वाली एवं उनसे अनुभव ज्ञान प्राप्त करने वाली और उनके प्रथम पट्टशिष्य चारित्र चूड़ामणि आचार्य श्री वीरसागर जी महाराज के करकमलों से आर्यिका दीक्षा को प्राप्त करने वाली, जैन समाज की सर्वोच्च साध्वी, वर्तमान में पीछीधारी सभी साधुओं में सबसे प्राचीन दीक्षित, परम पूज्य १०५ गणिनीप्रमुख श्री ज्ञानमती माताजी हैं, जिन्होंने जिनधर्म, जिनागम की विशेष प्रभावना की है। प्रतिक्षण पूज्य माताजी की यह भावना रहती है कि किस तरह से मैं वर्तमान में सभी भव्य जीवों को आगम के ज्ञान से, पूर्वाचार्यों की वाणी से सिंचित करूँ।

सच्चे ज्ञान की प्राप्ति धर्म गुरुओं से सहज ही हो जाती है जैसा कि श्री पूज्यपाद स्वामी ने इष्टोपदेश में कहा है–

अज्ञानोपास्तिरज्ञानं, ज्ञानं ज्ञानि समाश्रयः।
ददाति यत्तु यस्यास्ति, सुप्रसिद्धमिदं वचः।।

अर्थात् अज्ञानी की उपासना–संगति से प्राणी अज्ञान प्राप्त करता है तथा ज्ञानी की उपासना से ज्ञान प्राप्त करता है, क्योंकि 'जिसके पास जो कुछ है वह वही वस्तु प्रदान करता है' यह सुप्रसिद्ध वचन है।

किसी भी शास्त्र को पढ़ते समय यदि अर्थ समझ में नहीं आता है तो पूज्य माताजी कहती हैं कि मेरे गुरू आचार्य श्री वीरसागर जी महाराज कहा करते थे–

'पठितव्यं खलु पठितव्यं अग्रे अग्रे स्पष्टं भविष्यति' अर्थात् हमेशा पढ़ते रहो–पढ़ते रहो, आगे–आगे विषय स्पष्ट होगा। जैसे श्रावक की दैनिक षट् क्रियाओं में स्वाध्याय एक क्रिया है, उसी प्रकार मुनियों के ६ अंतरंग तपों में स्वाध्याय नाम का एक तप है। कहा भी है–**'स्वाध्यायः परमं तपः।'**

यह **'श्री गौतम गणधर वाणी'** की रचना करके पूज्य माताजी ने जैन समाज पर महान उपकार किया है। भगवान महावीर की साक्षात् दिव्यध्वनि के अंश को पढ़कर उसे हृदयंगम कर हम अपने सम्यग्दर्शन को शुद्ध करें और परम्परा से एक दिन मोक्ष पद को प्राप्त करें, इन्हीं 'मंगल भावनाओं के साथ पूज्य माताजी के पावन चरणों में कोटिशः नमन।

श्री गौतमस्वामी प्रणीत कृतियों का परिचय

गणिनी ज्ञानमती

चैत्यभक्ति आदि रचनाएँ श्री गौतमस्वामी प्रणीत हैं, इनके प्रमाण देखिए—

चैत्यभक्ति के प्रारंभ में टीकाकार श्री प्रभाचंद्राचार्य कहते हैं—

''**श्री वर्धमानस्वामिनं**'' **प्रत्यक्षीकृत्य गौतमस्वामी स्तुतिमाह**—

श्रीवर्धमान को प्रत्यक्ष देखकर-उनका प्रथम दर्शन प्राप्तकर श्री गौतमस्वामी स्तुति करते हुए कहते हैं—

हरिणी छंद—''**जयति भगवान्**''.....इत्यादि।

दैवसिक प्रतिक्रमण की टीका करते हुए श्री प्रभाचन्द्राचार्य कहते हैं–

''**श्री गौतमस्वामी मुनीनां दुष्षमकाले दुष्परिणामादिभिः प्रतिदिनमुपार्जितस्य कर्मणो विशुद्ध्यर्थं प्रतिक्रमणलक्षणमुपायं विदधानस्तदादौ मंगलार्थमिष्टदेवता-विशेषं नमस्करोति**—

'**श्रीमते वर्धमानाय नमो**'' इत्यादि।

इन उद्धरणों से भी ये रचनायें श्रीगौतमस्वामी के मुखकमल से विनिर्गत हैं। ऐसा स्पष्ट हो जाता है।

श्री गौतम स्वामी की मूल रचनाएँ चार हैं—

१. श्री चैत्यभक्ति, **२. दैवसिक प्रतिक्रमण**

३. पाक्षिक प्रतिक्रमण, **४. श्रावक प्रतिक्रमण**

इसमें चैत्यभक्ति स्वतंत्र है।

पुनः तीन रचनाओं से ९ रचनाएँ उद्धृत की गई हैं।

१. **कृतिकर्म विधि** (सिद्धभक्ति), २. **निषीधिका दण्डक**

३. **पडिक्कमामि भंते!,** ४. **वीरभक्ति**

ये चार रचनाएँ दैवसिक प्रतिक्रमण से उद्धृत हैं।

५. **गणधरवलय मंत्र,** ६. **सुदं मे आउस्संतो!** (श्रावकधर्म)

७. **सुदं मे आउस्संतो!** (मुनिधर्म), ८. **इच्छामि भंते!**

ये चार रचनाएँ पाक्षिक प्रतिक्रमण से उद्धृत हैं।

९. **एकादश प्रतिमा**

यह रचना श्रावक प्रतिक्रमण से उद्धृत है।

महत्त्वपूर्ण प्रेरणा

गणिनी ज्ञानमती

भगवान महावीर स्वामी के समवसरण में प्रभु के प्रथम **गणधरदेव श्री गौतमस्वामी** के मुखकमल से निकली हुई यह ''**श्री गौतमगणधर वाणी**'' अतिशय महिमा पूर्ण है। आप सभी जैनधर्मानुयायी के लिये मेरा कहना है कि–आप सभी भव्यात्मा प्रतिदिन इसका पाठ करें जैसे कि–भक्तामर स्तोत्र, सहस्रनाम एवं तत्त्वार्थसूत्र का बहुत से भव्यजन प्रतिदिन पाठ करते रहते हैं। वास्तव में आज जितने भी वाङ्मय—जैनग्रंथ उपलब्ध हैं वे सभी पंचमकालीन महान–महान आचार्यों द्वारा लिखित हैं। एक ये ही रचनायें श्री गौतमस्वामी की होने से चतुर्थकालीन हैं।

विशेषकर आप दशलक्षणपर्व में प्रथम दिन भगवान महावीरस्वामी की प्रतिमा का एवं श्री गौतमस्वामी की प्रतिमा अथवा उनके चरण का विधिवत् अभिषेक करके श्री महावीरस्वामी की पूजा करके, श्रीगौतम स्वामी की पूजा करें, पुनः प्रतिदिन श्री गौतमस्वामी की पूजा कर इन दशों अध्यायों को अर्घ्य चढ़ाकर क्रम से एक–एक दिन एक–एक अध्याय का वाचन करें तथा संक्षेप से एक–एक अध्याय का अर्थ करें, जैसा कि परम्परागत तत्त्वार्थसूत्र की पूजा एवं एक–एक अध्याय का अर्थ करते आ रहे हैं। कई एक वर्षों से प्रायः तत्त्वार्थसूत्र के एक–एक अध्याय के अर्थ की परंपरा छूटती जा रही है।

अब आप साक्षात् श्रीगौतमस्वामी की वाणी को पढ़ने–पढ़ाने व सुनने–सुनाने की परंपरा प्रारंभ करके असंख्यातगुणा पुण्य संपादन करें यही मेरी महत्त्वपूर्ण विशेष प्रेरणा है।

यह 'श्री गौतमगणधर वाणी' हमारे और आप सभी के जीवन में मंगलकारी हो, यही मंगल कामना है।

श्री गौतम गणधर पूजा

गीता छंद

गणपति गणीश गणेश गणनायक गणीश्वर नाम हैं।
गणनाथ गणस्वामी गणाधिप आदि नाम प्रधान हैं।।
उन इंद्रभूति गणीन्द्र गौतम स्वामि गणधर को जजूँ।
स्थापना करके यहाँ सब कार्य में मंगल भजूँ।।१।।

ॐ ह्रीं श्रीगौतमगणधरपरमेष्ठिन्! अत्र अवतर अवतर संवौषट् आह्वाननं।
ॐ ह्रीं श्रीगौतमगणधरपरमेष्ठिन्! अत्र तिष्ठ तिष्ठ ठः ठः स्थापनं।
ॐ ह्रीं श्रीगौतमगणधरपरमेष्ठिन्! अत्र मम सन्निहितो भव भव वषट् सन्निधीकरणं।

अथाष्टकं-नन्दीश्वर पूजन चाल

रेवानदि का शुचि नीर, बाहर मल धोवे।
तुम चरणन धारा देत, अंतर्मल खोवे।।
श्री गौतम गणधर देव, पूजूँ मन लाके।
सब ऋद्धि सिद्धि भरपूर, होवें तुम ध्याके।।१।।

ॐ ह्रीं श्रीगौतमगणधरस्वामिने जन्मजरामृत्युविनाशनाय जलं निर्वपामीति स्वाहा।

मलयज चंदन घनसार, तन का ताप हरे।
तुम पद पूजा तत्काल, अंतर्ताप हरे।।श्री गौतम.।।२।।

ॐ ह्रीं श्रीगौतमगणधरस्वामिने संसारतापविनाशनाय चंदनं निर्वपामीति स्वाहा।

तंदुल सित मुक्तारूप, धोकर भर लीने।
तुम पद आगे धर पुंज, आतम गुण चीन्हे।।श्री गौतम.।।३।।

ॐ ह्रीं श्रीगौतमगणधरस्वामिने अक्षयपदप्राप्तये अक्षतं निर्वपामीति स्वाहा।

चंपक वर हरसिंगार, सुरतरु सुमन लिया।
तुम कामजयी पद पूज, निजमन सुमन किया।।श्री गौतम.।।४।।

ॐ ह्रीं श्रीगौतमगणधरस्वामिने कामबाणविध्वंसनाय पुष्पं निर्वपामीति स्वाहा।

लाडू बरफी पकवान, सुवरण थाल भरे।
निज क्षुधा निवारण हेतु, तुम पद पूज करें।।
श्री गौतम गणधर देव, पूजूँ मन लाके।
सब ऋद्धि सिद्धि भरपूर, होवें तुम ध्याके।।५।।

ॐ ह्रीं श्रीगौतमगणधरस्वामिने क्षुधारोगविनाशनाय नैवेद्यं निर्वपामीति स्वाहा।

कर्पूर शिखा प्रज्वाल, दीपक ज्योति जले।
तुम पद पूजत तत्काल, अंतर ज्योति जले।।श्री गौतम.।।६।।

ॐ ह्रीं श्रीगौतमगणधरस्वामिने मोहान्धकारविनाशनाय दीपं निर्वपामीति स्वाहा।

दशगंध सुगंधित धूप, खेवत धूम्र उड़े।
निज अशुभ करम हों भस्म, उसकी धूम्र उड़े।।श्री गौतम.।।७।।

ॐ ह्रीं श्रीगौतमगणधरस्वामिने अष्टकर्मदहनाय धूपं निर्वपामीति स्वाहा।

बादाम सुपारी सेव, उत्तम फल लाऊँ।
गणनाथ चरण युगपूज, वांछित फल पाऊँ।।श्री गौतम.।।८।।

ॐ ह्रीं श्री गौतमगणधरस्वामिने मोक्षफलप्राप्तये फलं निर्वपामीति स्वाहा।

जल गंधादिक वसु द्रव्य, लेकर अर्घ्य करूँ।
अनुपम निजपद के हेतु, तुम पद भक्ति करूँ।।श्री गौतम.।।९।।

ॐ ह्रीं श्रीगौतमगणधरस्वामिने अनर्घ्यपदप्राप्तये अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

गुरु चरणन जल की धार, देकर शांति करूँ।
सब जग में शांती हेतु, शांतीधार करूँ।।श्री गौतम.।।१०।।

शांतये शांतिधारा।

वकुलादिक कुसुम मंगाय, पुष्पांजलि कर में।
सब विघ्न अमंगल दोष, नाशूँ इक पल में।।श्री गौतम.।।११।।

दिव्य पुष्पांजलिः।

जाप्य — ॐ ह्रीं श्रीगौतमगणधरस्वामिने नमः (१०८ या ९ बार)।

जयमाला

दोहा

परमब्रह्म परमात्मा, परमानंद निलीन।
गाऊँ तुम गुणमालिका, होवे भवदुखक्षीण।।१।।

रोला छंद

जय जय गणधर देव, जय जय गुण गण स्वामी।
महावीर जिनदेव, समवसरण में नामी।।
जय जय विघ्न समूह, नाशक विश्व प्रसिद्धा।
सप्तऋद्धि परिपूर्ण, चार विज्ञान समृद्धा।।२।।
इन्द्रभूति तुम नाम, महाविभूति प्रदाता।
ब्राह्मण कुल अवतंस, गौतम गोत्र विख्याता।।
शास्त्र महोदधि तीर्ण, पांच शतक तुम छात्रा।
तुम सम ही दो भ्रात, गर्वित सहित सुछात्रा।।३।।
छ्यासठ दिन पर्यंत, प्रभु की खिरी न वाणी।
सौधर्मेंद्र उपाय, कीनो अति सुखठानी।।
गौतमशाला माहिं, वृद्धरूप धर आया।
तुम सब विद्याधीश, इससे तुम तक आया।।४।।
मेरे गुरु महावीर, आतम ध्यान लगाये।
भूल गया मैं अर्थ, जो जो श्लोक पढ़ाये।।
यदि दो अर्थ बताय, तो तुम शिष्य बनूँ मैं।
नहिं तो होवो शिष्य, मुझ गुरु के ये चहूँ मैं।।५।।
त्रैकाल्यं इत्यादि, जब यह श्लोक पढ़ा है।
अर्थ बोध से हीन, मन आश्चर्य बढ़ा है।।
चलो गुरू के पास, मैं शास्त्रार्थ करूँगा।
तुम हो छात्र अजान, गुरु से अर्थ कहूँगा।।६।।
उभय भ्रात के साथ, सब शिष्यों को लेके।
चले इंद्र के साथ, समवसरण अवलोके।।

मानस्तंभ निहार, मान गलित हुआ सारा।
वचन ''जयतु भगवान्'' स्तुति रूप उचारा।।७।।
निज मिथ्यात्व विनाश, जिनदीक्षा को लीना।
दिव्यध्वनि तत्काल, प्रगटी भवि सुख दीना।।
द्वादशांग मय ग्रंथ, गौतम गुरु ने कीने।
गणधर पद को पाय, सब ऋद्धी धर लीने।।८।।
वीर प्रभू निर्वाण, के दिन केवल पायो।
इन्द्र सभी मिल आय, गंधकुटी रचवायो।।
केवलज्ञान कल्याण, पूजा इन्द्र रचे हैं।
केवलज्ञान महान, लक्ष्मी को भी जजे हैं।।९।।
इसी हेतु सब लोग, दीपावली निशा में।
गणपति लक्ष्मी देवि, पूजें धनरुचि मन में।।
बारह वर्ष विहार, भवि उपदेश दिया है।
पुनः अघाति विनाश, मोक्ष प्रवेश किया है।।१०।।
गणधर पूजा सत्य, सर्वसंपदा देवें।
धन धान्यादिक पूर, मोक्ष संपदा देवें।।
इस हेतू हम आज, गणधर चरण जजे हैं।
''केवलज्ञान'' प्रकाश, हेतू आप भजे हैं।।११।।

दोहा

चौबीसों जिनराज की, गणधर गणना जान।
चौदह सौ बावन कही, तिनपद जजूँ महान्।।१२।।

ॐ ह्रीं श्रीगौतमगणधरपरमेष्ठिने जयमाला महार्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

दोहा

जो पूजें गणधर चरण, करें विघ्नघन हान।
जग के सब सुख भोग के, क्रम से लें निर्वाण।।

।।इत्याशीर्वादः।।

श्री गौतम गणधर वाणी

(१)

मंगलाचरण

श्रीमते वर्धमानाय, नमो नमितविद्विषे।
यज्ज्ञानान्तर्गतं भूत्वा, त्रैलोक्यं गोष्पदायते।।१।।

–चौबोल छंद–**पद्यानुवाद**

श्रीमन् वर्द्धमान को प्रणमूँ, जिनने अरि को नमित किया।
जिनके पूर्ण ज्ञान में त्रिभुवन, गौखुर सम दिखलाई दिया।।
ऐसे अंतिम तीर्थंकर श्री–महावीर को नित्य नमूं।
वीर महतिमहावीर सन्मती–प्रभु को कोटि कोटि प्रणमूँ।।१।।

मंगलाचरण का अर्थ

जिनके अनन्त ज्ञानादि अन्तरंग विभूति और समवसरण बहिरंग विभूति विद्यमान है, जिनने उपसर्ग करने वाले संगमदेव आदि शत्रुओं का सिर अपने चरणों में झुकाया है, ऐसे अंतिम तीर्थंकर भगवान वर्धमान जिनेन्द्र को नमस्कार हो। जिनके ज्ञान में तीन लोक गोष्पद के समान झलकता है।।१।।

चैत्यभक्ति :

हरिणीछंद —

जयति भगवान् हेमाम्भोजप्रचारविजृंभिता-
वमरमुकुटच्छायोद्गीर्णप्रभापरिचुम्बितौ।
कलुषहृदया मानोद्भ्रान्ताः परस्परवैरिणो।
विगतकलुषाः पादौ यस्य प्रपद्य विशश्वसुः।।१।।
तदनु जयति श्रेयान् धर्मः प्रवृद्धमहोदयः
कुगति-विपथ-क्लेशाद्योऽसौ विपाशयति प्रजाः।

पद्यानुवाद

जय हे भगवन् ! चरण कमल तव, कनक कमल पर करें विहार।
इन्द्रमुकुट की कांति प्रभा से, चुंबित शोभें अति सुखकार।।
जातविरोधी कलुषमना, क्रुध मान सहित जन्तूगण भी।
ऐसे तव पद का आश्रय ले, प्रेम भाव को धरें सभी।।१।।
जय हो श्रेयस्कर धर्मामृत, वृद्धिंगत महिमाशाली।
कुगति कुपथ से प्राणीगण को, निकालकर दे सुख भारी।।

चैत्यभक्ति का अर्थ

अर्थ—जो सुवर्णमय कमलों पर सामान्य मनुष्यों में न पाये जाने वाले और चरण क्रम के संचार से रहित प्रचार—गमन से शोभायमान हैं, देवों के मुकुटों में लगी हुई मणियों से निकलती हुई प्रभा से आलिंगित-स्पर्शित हैं ऐसे जिनेन्द्र भगवान के चरणों में आकर कलुष हृदय वाले , अहंकार से युक्त, परस्पर वैरी ऐसे सर्प, नेवला आदि जीव अपने-अपने स्वाभाविक क्रूर स्वभाव को छोड़कर विश्वास को प्राप्त होते हैं वे भगवान् जिनेन्द्र जयवंत रहें ।।१।। अनन्तर उत्तमक्षमादिलक्षण श्रेष्ठ धर्म जयवंत हो, जिससे प्राणियों के स्वर्गादि पदों की प्राप्ति वृद्धि को प्राप्त होती है। जो संसारी जीवों को नरकादि कुगतियों से,

परिणतनयस्याङ्गी - भावाद्विवित्तविकल्पितं
भवतु भवतस्त्रातृ त्रेधा जिनेन्द्रवचोऽमृतम्।।२।।
तदनु जयताज्जैनी वित्तिः प्रभंगतरंगिणी
प्रभवविगमध्रौव्य - द्रव्यस्वभावविभाविनी।
निरुपमसुखस्येदं द्वारं विघट्य निरर्गलं
विगतरजसं मोक्षं देयान्निरत्ययमव्ययम्।।३।।
अर्हत्सिद्धाचार्यो-पाध्यायेभ्यस्तथा च साधुभ्यः।
सर्वजगद्वंद्येभ्यो, नमोऽस्तु सर्वत्र सर्वेभ्यः।।४।।

नय को मुख्य गौण करने से, बहुत भेदयुत सुखदाता।
ऐसे जिनवचनामृतमय, हे धर्म! करो जग से रक्षा।।२।।
जय हो जैनी वाणी जग में, सप्तभंगमय गंगा है।
व्यय उत्पाद ध्रौव्ययुत द्रव्यों, के स्वभाव को प्रगट करे।।
अनुपम शिवसुख द्वार खोलती, अव्यय सुख को देती है।
विघ्न रहित अरु कर्म धूलि से, रहित मोक्ष को देती है।।३।।
अर्हत सिद्धाचार्य उपाध्याय, सर्व साधुगण सुरवंदित।
त्रिभुवन वंदित पंच परम गुरु, नमोऽस्तु तुमको मम संतत।।४।।

मिथ्यादर्शन आदि कुमार्गों से और उनसे होने वाले क्लेशों से छुड़ाता है। तथा द्रव्यार्थिक नय को गौणकर पर्यायार्थिक नय की प्रधानता लेकर अङ्ग, पूर्व आदिरूप से रचा गया अथवा पूर्वापर दोष रहित रचा गया ऐसा उत्पाद-व्यय-ध्रौव्यरूप से अथवा अङ्ग, पूर्व और अंगबाह्यरूप से तीन प्रकार का जिनेन्द्र का वचनरूप अमृत संसार से रक्षा करे।।२।। अनन्तर जिनेन्द्र का केवलज्ञान जयवंत हो, जिसमें स्यादस्ति, स्यान्नास्ति आदि सात भंगरूप कल्लोलें हैं जो द्रव्यों के उत्पाद, व्यय, ध्रौव्यरूप स्वभावों को प्रकाशित करता है। ऐसा यह केवलज्ञान अनन्तसुख के मोहनीयरूप द्वार को अंतरायरूप अर्गल (सांकल) से रहित उद्घाटन कर ज्ञानदर्शनावरणरूप रज से रहित, व्याधि अथवा जरा-मरण से रहित अविनश्वर मोक्ष को देवे।।३।। सम्पूर्ण जगत् द्वारा वन्दनीय सब अर्हंतों को, सब आचार्यों को, सब उपाध्यायों को और सब साधुओं को नमस्कार हो।।४।।

मोहादिसर्वदोषारि-घातकेभ्यः सदा हतरजोभ्यः।
विरहितरहस्कृतेभ्यः पूजार्हेभ्यो नमोऽर्हद्भ्य।।५।।
क्षान्त्यार्जवादिगुणगण-सुसाधनं सकललोकहितहेतुं।
शुभधामनि धातारं, वन्दे धर्मं जिनेन्द्रोक्तम्।।६।।
मिथ्याज्ञानतमोवृत-लोकैकज्योतिरमितगमयोगि।
सांगोपांगमजेयं, जैनं वचनं सदा वन्दे।।७।।
भवनविमानज्योति-र्व्यंतरनरलोकविश्वचैत्यानि।
त्रिजगदभिवन्दितानां, वंदे त्रेधा जिनेन्द्राणां।।८।।

मोहारि के घातक द्वयरज, आवरणों से रहित जिनेश।
विघ्न-रहस विरहित पूजा के, योग्य अर्हत को नमूँ हमेश।।५।।
क्षमादि उत्तम गुणगण साधक, सकल लोक हित हेतु महान्।
शुभ शिवधाम धरे ले जाकर, जिनवर धर्म नमूँ सुख खान।।६।।
मिथ्याज्ञान तमोवृत जग में, ज्योतिर्मय अनुपम भास्कर।
अंगपूर्वमय विजयशील, जिनवचन नमूँ मैं शिर नत कर।।७।।
भवनवासि व्यन्तर ज्योतिष, वैमानिक में नरलोक में ये।
जिनभवनों की त्रिभुवन वंदित, जिनप्रतिमा को वंदूँ मैं।।८।।

जो मोह, राग, द्वेष आदि सम्पूर्ण दोषरूप शत्रुओं के घातक हैं जिनने हमेशा के लिये ज्ञानावरणरूप रज को नष्ट कर दिया है तथा अन्तराय कर्म का भी जिनने विनाश कर दिया है ऐसे पूजा योग्य अर्हंतों को नमस्कार हो ।।५।।

क्षमा, मार्दव, आर्जव, शौच आदि गुणों का समुदाय जिसकी उत्पत्ति में साधन है। जो सम्पूर्ण लोक के हित का कारण है और शुभ धाम जो निर्वाण उसमें स्थापन करने वाला है ऐसे जिनेन्द्रोक्त धर्म को वन्दन करता हूँ ।।६।। जो मिथ्याज्ञानरूप अन्धकार से आच्छादित लोक का प्रकाशक होने से अद्वितीय ज्योति है। अपरिमित श्रुतज्ञान का जनक होने से संबंधी है। आचारादि अङ्गों और पूर्व वस्तु आदि उपांगों से युक्त है तथा एकान्तवादियों कर अजेय है ऐसे जैनवचन की सदा वन्दना करता हूँ ।।७।। भवनवासी देवों, कल्पवासी

भुवनत्रयेऽपि भुवन-त्रयाधिपाभ्यर्च्य-तीर्थकर्तृणाम्।
वन्दे भवाग्निशान्त्यै, विभवानामालयालीस्ताः।।९।।

इति पंचमहापुरुषाः, प्रणुता जिनधर्म-वचन-चैत्यानि।
चैत्यालयाश्च विमलां, दिशन्तु बोधिं बुधजनेष्टां।।१०।।

अकृतानि कृतानि चाप्रमेय-द्युतिमन्तिद्युतिमत्सु मन्दिरेषु।
मनुजामरपूजितानि वंदे, प्रतिबिम्बानि जगत्त्रये जिनानाम्।।११।।

भुवनत्रय में जितने जिनगृह,भवविरहित तीर्थंकर के।
भवाग्नि शांति हेतु नमूँ मैं, त्रिभुवनपति से अर्चित ये।।९।।

इस विध प्रणुत पंचपरमेष्ठी, श्री जिनधर्म जिनागम को।
विमल चैत्य चैत्यालय वंदूँ, बुधजन इष्ट बोधि मम दो।।१०।।

द्युतिकर जिनगृह में अकृत्रिम, कृत्रिम अप्रमेय द्युतिमान।
नर सुर पूजित भुवनत्रय के, सब जिन बिंब नमूँ गुणखान।।११।।

देवों,ज्योतिष्क देवों और व्यन्तर देवों के विमानों में तथा मनुष्य लोक में तीन जगत् कर वन्दनीय जिनेन्द्रदेव की जितनी भर प्रतिमा हैं उन सबको मन, वचन और काय से वन्दना करता हूँ ।।८।।

जिनका संसारपरिभ्रमण विनष्ट हो चुका है, तीनभुवन के स्वामी देवेन्द्र, नरेन्द्र और धरणेन्द्र द्वारा पूज्य ऐसे तीर्थंकरों के आलय-मन्दिर की पंक्तियों को भी संसाररूप अग्नि की शांति के लिये वन्दना करता हूँ।।९।।

इस तरह वंदना किये गये अर्हंत, सिद्ध, आचार्य, उपाध्याय, साधु, जिनधर्म, जिनवचन, जिनचैत्य और जिनचैत्यालय ये नवदेवता बुधजन जो गणधर देवादि उनको इष्ट ऐसी मुझे निर्मल बोधि देवें ।।१०।।

तीन जगत में विद्यमान प्रचुरप्रभा से समन्वित मन्दिरों में स्थित, मनुष्यों और देवों द्वारा पूज्य, प्रचुरतर प्रभायुक्त कृत्रिम और अकृत्रिम जिनेन्द्र के प्रतिबिंबों को प्रणमन करता हूँ ।।११।।

द्युतिमंडलभासुरांगयष्टीः, प्रतिमा अप्रतिमा जिनोत्तमानाम्।
भुवनेषु विभूतये प्रवृत्ता, वपुषा प्राञ्जलिरस्मि वन्दमानः।।१२।।

विगतायुधविक्रियाविभूषाः, प्रकृतिस्थाः कृतिनां जिनेश्वराणाम्।
प्रतिमाः प्रतिमागृहेषु कांत्या- प्रतिमा कल्मषशान्तयेऽभिवन्दे।।१३।।

कथयन्ति कषायमुक्तिलक्ष्मीं, परया शान्ततया भवान्तकानाम्।
प्रणमाम्यभिरूपमूर्तिमन्ति, प्रतिरूपाणि विशुद्धये जिनानाम् ।।१४।।

यदिदं मम सिद्धभक्तिनीतं, सुकृतं दुष्कृतवर्त्मरोधि तेन।
पटुना जिनधर्म एव भक्ति- र्भवताज्जन्मनि जन्मनि स्थिरा मे।।१५।।

द्युतिमंडल भासुर तनु शोभित, जिनवर प्रतिमा अप्रतिम हैं।
जग में वैभवहेतु उन्हें, वंदूँ अंजलिकर शिर नत मैं।।१२।।

आयुध विक्रिय भूषा विरहित, जिनगृह में प्रतिमा प्राकृत।
कांती से अनुपम हैं कल्मष, शांति हेतु मैं नमूँ सतत।।१३।।

परम शांति से कषायमुक्ती, को कहती मनहर अभिरूप।
भव के अंतक जिन की प्रतिमा, प्रणमूँ मन विशुद्धि के हेतु।।१४।।

दुष्कृतपथ रोधक मम सिद्ध-भक्ति से हुआ पुण्य जो भी।
भव-भव में जिनधर्म हि में, दृढ़ भक्ति रहे फल मिले यही।।१५।।

जो तीन भुवन में विद्यमान हैं जिनका शरीर — यष्टि प्रभामंडल से दैदीप्यमान है ऐसी अर्हंतों की अनुपम प्रतिमाओं को वन्दना करने वाला मैं पुण्य की प्राप्ति के निमित्त शरीर से अंजलि बांधता हूँ अर्थात् ऐसी प्रतिमाओं को हाथ जोड़कर नमस्कार करता हूँ ।।१२।। जो आयुध, विकार, आभूषणों से रहित हैं। अपने ही स्वभाव में स्थित हैं तथा कान्ति में अतुल्य हैं ऐसी कृती अर्थात् कृतकृत्य जिनेश्वरों की प्रतिमागृहों में विराजमान प्रतिमाओं को पाप की शान्ति के लिये वन्दन करता हूँ।।१३।। उत्कृष्ट शान्तता युक्त होने से कषाय के अभावरूप लक्ष्मी को कहने वाली, जिनेश्वर का जैसा रूप है वैसी मूर्तिमती, ऐसी संसार का नाश कर देने वाले जिनेश्वरों की मूर्तियों को आत्मपरिणामों की निर्मलता होने के लिये नमस्कार करता हूँ।।१४।। तीन जगत में प्रसिद्ध अर्हंतों के प्रतिबिंबों

अर्हतां सर्वभावानां, दर्शनज्ञानसम्पदाम्।
कीर्तयिष्यामि चैत्यानि, यथाबुद्धि विशुद्धये।।१६।।
श्रीमद्भावनवासस्थाः, स्वयंभासुरमूर्तयः।
वन्दिता नो विधेयासुः, प्रतिमाः परमां गतिम्।।१७।।
यावन्ति सन्ति लोकेऽस्मिन्नकृतानि कृतानि च।
तानि सर्वाणि चैत्यानि, वन्दे भूयांसि भूतये।।१८।।
ये व्यन्तरविमानेषु, स्थेयांसः प्रतिमागृहाः।
ते च संख्यामतिक्रान्ताः, सन्तु नो दोषविच्छिदे।।१९।।

सब पदार्थवित् दर्श ज्ञान-सम्पत् युत अर्हत की प्रतिमा।
यथा बुद्धि मनशुद्धि हेतु, गुण कीर्तन करूँ अतुल महिमा।।१६।।
श्रीमद् भवनवासि के गृह में, भासुर जिनमूर्ति स्वयमेव।
परम सिद्धगति करें हमारी, वंदूँ उन्हें करूँ नित सेव।।१७।।
इस जग में जितनी प्रतिमा हैं, कृत्रिम अकृत्रिम सबको।
मैं वंदूँ शिव वैभवहेतु, सब जिनचैत्य जिनालय को।।१८।।
व्यंतर के विमान में जिनगृह, उनमें अकृत्रिम प्रतिमा।
संख्यातीत कही हैं वंदूँ, दोष नाश के हेतु सदा।।१९।।

की भक्ति करने से जो यह पुण्य मुझे प्राप्त हुआ है जो कि पाप के मार्ग को रोकने वाला है उस समर्थ पुण्य से मेरी भक्ति जन्म-जन्म में जिनधर्म में ही स्थिर होवे ।।१५।। सम्पूर्ण पदार्थ जिनके विषयभूत हैं अथवा परिपूर्ण यथाख्यातचारित्र जिनके विद्यमान है, क्षायिकदर्शन और क्षायिकज्ञानरूप संपदा जिनके मौजूद है ऐसे अर्हंतों के चैत्यों का अपनी बुद्धि के अनुसार परिणामों की निर्मलता के लिए अथवा कर्ममल के प्रक्षालन के लिये कीर्तन करूँगा ।।१६।। मेरे द्वारा जिनकी वन्दना की गई है जो भवनवासी देवों के दैदीप्यमान भवनों में स्थित हैं जिनका स्वरूप स्वयं भासुररूप है ऐसी प्रतिमाएँ मुझ वंदक को परमगति अर्थात् मुक्ति प्रदान करें ।।१७।। इस तिर्यग्लोक में कृत्रिम और अकृत्रिम जितने प्रचुरतर प्रतिबिंब हैं उन सबको विभूति के लिए वंदन करता हूँ ।।१८।। व्यंतरों के आवासों में सर्वदा अवस्थित जो असंख्यात प्रतिमागृह हैं वे मेरे दोषों की शान्ति के लिये होवें ।।१९।।

ज्योतिषामथ लोकस्य, भूतयेऽद्भुतसम्पदः।
गृहाः स्वयंभुवः सन्ति, विमानेषु नमामि तान्।।२०।।
वन्दे सुरतिरीटाग्र - मणिच्छायाभिषेचनम्।
याः क्रमेणैव सेवंते, तदर्चाः सिद्धिलब्धये।।२१।।
इति स्तुतिपथातीत - श्रीभृतामर्हतां मम।
चैत्यानामस्तु संकीर्तिः, सर्वास्रवनिरोधिनी।।२२।।
अर्हन्महानदस्य, त्रिभुवनभव्यजनतीर्थयात्रिकदुरित-
प्रक्षालनैककारण-मतिलौकिककुहकतीर्थमुत्तमतीर्थम्।।२३।।

ज्योतिष देवों के विमान में, अद्भुत संपत्युत जिनगेह।
स्वयंभुवा प्रतिमा भी अगणित, उन्हें नमूँ निज वैभव हेतु।।२०।।
सुरपति के नत मुकुटमणि-प्रभ से अभिषेक हुआ जिनका।
वैमानिक सुर सेवित प्रतिमा, सिद्धि हेतु मैं नमूँ सदा।।२१।।
इस विध स्तुति पथातीत, अन्तर बाहिर श्रीयुत अर्हन्।
चैत्यों के संकीर्तन से मम, सर्वास्रव का हो रोधन।।२२।।
अर्हद्देव महानद उत्तम-तीर्थ अलौकिक हैं जग में।
त्रिभुवन भविजन तीर्थस्नान से, पापों का क्षालन करते।।२३।।

अनन्तर ज्योतिषी देवों के विमानों में अद्भुत सम्पत्तिधारी अर्हंतों के जो शाश्वत गृह हैं उनको मैं विभूति के निमित्त नमस्कार करता हूँ ।।२०।। जो देवों के मुकुट के अग्र भाग में लगी हुई मणियों की कान्ति से अभिषेक को चरणों द्वारा सेवन करती हैं अर्थात् जिनके चरणों में वैमानिक देव सिर झुकाते हैं उन वैमानिक देवों के विमान संबंधी प्रतिमाओं को मुक्ति की प्राप्ति के लिये नमस्कार करता हूँ ।।२१।। इस प्रकार स्तुति के मार्ग को अतिक्रमण करने वाली अर्थात् जिसकी स्तुति इन्द्रादिक देव भी नहीं कर सकते, ऐसी अंतरंग और बहिरंग लक्ष्मी को धारण करने वाले अर्हंतों के चैत्यों की स्तुति मेरे सम्पूर्ण आस्रवों को रोकने वाली होवे ।।२२।। जो तीन भुवन में निवास करने वाले भव्यजनरूप तीर्थ यात्रियों के पाप कर्म के

लोकालोकसुतत्त्व-प्रत्यवबोधनसमर्थदिव्यज्ञान-
प्रत्यहवहत्प्रवाहं, व्रतशीलामल विशालकूलद्वितयम्।।२४।।
शुक्लध्यानस्तिमित-स्थितराजद्राजहंसराजितमसकृत्।
स्वाध्यायमन्द्रघोषं, नानागुणसमितिगुप्ति सिकतासुभगम्।।२५।।
क्षान्त्यावर्तसहस्रं, सर्वदया विकचकुसुमविलसल्लतिकम्।
दुःसहपरीषहाख्य - द्रुततररंगत्तरंगभंगुरनिकरम् ।।२६।।
व्यपगतकषायफेनं, रागद्वेषादिदोष-शैवलरहितम्।
अत्यस्तमोहकर्दम-मतिदूरनिरस्तमरणमकरप्रकरम्।।२७।।

लोकालोक सुतत्त्व प्रकाशक, दिव्यज्ञान जल नित बहता।
शील रु सद्व्रत विशाल निर्मल, दो तट से शोभित दिखता।।२४।।
शुक्लध्यानमय राजहंस, स्थिर राजत है इस नद में।
मंद्रघोष स्वाध्याय विविधगुण, समिति गुप्ति बालू चमके।।२५।।
क्षमादि हैं आवर्त सहस्रों, सर्वदयामय कुसुम खिले।
लता शोभती दुःसह परीषह, भंग तरंगित हैं लहरें।।२६।।
रहित कषाय फेन से राग-द्वेष आदि शैवाल रहित।
रहित मोह कीचड़ से मरणादिक जलचर मकरादि रहित।।२७।।

प्रक्षालन करने में अद्वितीय कारण है, जिसने लौकिक मिथ्या तीर्थों का अतिक्रमण—उल्लंघन कर दिया है, जिसमें लोक और अलोक का सच्चा स्वरूप समझाने में समर्थ ऐसे दिव्य केवलज्ञान या मतिश्रुतादि ज्ञान ही प्रतिदिन बहते हुये प्रवाह हैं, व्रत और शील ही जिसके स्वच्छ और विशाल दो तट हैं, जो शुक्लध्यानरूप स्थित ऐसे दीप्त राजहंसों से शोभित है, जिसमें निरंतर स्वाध्याय पाठ ही मनोज्ञ नाद (शब्द) हैं, जो चौरासी लाख गुण, पंच समिति और तीन गुप्तिरूप सिकता (बालू) से सुशोभित है, जिसमें क्षमागुण ही हजारों आवर्त—लहरें हैं, सम्पूर्ण प्राणियों पर दयाभाव ही खिले हुए पुष्पों से शोभायमान बेल है, दुःसह क्षुधादि परीषह ही शीघ्र इधर-उधर फैलती हुई चंचल तरंगों का समुदाय है, कषायरूप फेन जिसमें नष्ट हो गया है, जो राग-द्वेषादि दोषरूप शैवाल (कांजी) से रहित है, जिसमें मोहरूप

ऋषिवृषभस्तुतिमन्द्रो-द्रेकितनिर्घोषविविधविहगध्वानम्।
विविधतपोनिधिपुलिनं, सास्रवसंवरणनिर्जरानिःस्रवणं।।२८।।
गणधरचक्रधरेन्द्र-प्रभृतिमहाभव्यपुंडरीकैःपुरुषैः,
बहुभिः स्नातं भक्त्या, कलिकलुषमलापकर्षणार्थममेयम्।।२९।।
अवतीर्णवतः स्नातुं, ममापि दुस्तरसमस्तदुरितं दूरं।
व्यपहरतु परमपावन-मनन्यजय्यस्वभावभावगभीरं।।३०।।

ऋषि प्रधान के मधुर स्तव हों, विविध पक्षि के शब्द सदृश।
विविध साधुगण तट हैं आस्रव, रोध निर्जरा जल निःसृत।।२८।।
गणधर चक्री इन्द्र आदि जो, भव्य प्रवर बहु पुरुष प्रधान।
कलिमल कलुष दूर करने हित, भक्ति से यहाँ किया स्नान।।२९।।
इस विध श्री अर्हंत महाप्रभु, महातीर्थ गणधर कहते।
भविजन पाप मैल क्षालन हित, इसमें अवगाहन करते।।
अति पावन यह तीर्थ अन्य से, अजेय अनुपम है गंभीर।
मैं स्नान हेतु उतरा हूँ, मम दुष्कृत मल करिये दूर।।३०।।

कीचड़ का अभाव है, मरणरूप मकरों का समूह नष्ट हो चुका है, ऋषिश्रेष्ठ गणधर देवादिकों कर बोली गई स्तुतियों के मनमोहक उत्कट शब्द ही नाना प्रकार के पक्षियों के कलरव हैं, नाना भांति के तपोनिधि-मुनि ही किनारा है, जो आते हुए कर्मरूप जल के संवरण और आए हुए कर्मरूप जल के निःस्रवण से युक्त है, जिसमें गणधर , चक्रधर, इन्द्र आदि भव्य-पुंडरीक पुरुषों ने पापरूप कलुष मल को दूर करने के लिये भक्तिपूर्वक स्नान किया है, जो बड़ा भारी है, परम पवित्र है, जिनके स्वरूप प्रतिवादियों करके न जीते जा सकें ऐसे जीवादि पदार्थों से जो अगाध है, ऐसा अर्हंतरूप महानद का उत्तम तीर्थ पापमल का प्रक्षालनरूप स्नान करने के लिये प्रविष्ट हुए मेरे भी दुस्तर समस्त पापों का व्यवहरण—नाश करे ।।२३-३०।।

—पृथ्वी छंद—

अताम्रनयनोत्पलं, सकलकोपवह्नेर्जयात् ,
कटाक्षशरमोक्षहीन - मविकारतोद्रेकतः।।
विषादमदहानितः, प्रहसितायमानं सदा,
मुखं कथयतीव ते, हृदयशुद्धिमात्यन्तिकीम्।।३१।।
निराभरणभासुरं, विगतरागवेगोदया-
न्निरंबरमनोहरं, प्रकृतिरूपनिर्दोषतः।
निरायुधसुनिर्भयं, विगतहिंस्यहिंसाक्रमात्
निरामिषसुतृप्तिमद्विविधवेदनानां क्षयात्।।३२।।

क्रोधाग्नि को जीत लिया नहिं, नेत्र कमल लालिमा प्रभो!
नहिं विकार उद्रेक अतः प्रभु, दृष्टि कटाक्ष रहित तुम हो।।
मद विषाद से रहित अतः, स्मित मुख सदा रहे भगवन् ।
कहता है यह मंदहास्य तव, अंतःकरण शुद्धि पूरण।।३१।।
रागोद्रेक रहित होने से, बिन आभूषण शोभित हो।
प्रकृति रूप निर्दोष तुम्हारा, प्रभु निर्वस्त्र मनोहर हो।।
हिंसा हिंस्य भावविरहित से, आयुध रहित सुनिर्भय हो।
विविध वेदना के क्षय से बिन-भोजन तृप्त सदा प्रभु हो।।३२।।

हे भगवन् जिनेन्द्र ! सम्पूर्ण कोपरूप अग्नियों के क्षय हो जाने से जिसमें नयनरूप उत्पलपत्र कुछ-कुछ लाल हैं या लालिमा रहित हैं, वीतरागता की परम प्रकर्षता के होने से जो कटाक्षरूप वाणों के छोड़ने से रहित है, विषाद और मद की हानि होने से सदा प्रफुल्लित है ऐसा आपके यथाजातरूप में आपका मुख आपके हृदय की आत्यंतिक शुद्धि को कह रहा है। हे भगवन् ! आपका रूप राग के आवेग के उदय के नष्ट हो जाने से आभरण रहित होने पर भी भासुररूप है, आपका स्वाभाविक रूप निर्दोष है इसलिये वस्त्र रहित नग्न होने पर भी मनोहर है, आपका यह रूप न औरों के द्वारा हिंस्य है और न औरों का हिंसक है इसलिये आयुध रहित होने पर भी अत्यन्त निर्भय स्वरूप है तथा

मितस्थितनखांगजं, गतरजोमलस्पर्शनं
नवांबुरुहचन्दन - प्रतिमदिव्यगन्धोदयम्।
रवीन्दुकुलिशादि - दिव्यबहुलक्षणालंकृतं
दिवाकरसहस्त्रभासुर - मपीक्षणानां प्रियम् ।।३३।।
हितार्थपरिपंथिभिः, प्रबलरागमोहादिभिः
कलंकितमना जनो, यदभिवीक्ष्य शोशुद्ध्यते।
सदाभिमुखमेव यज्जगति पश्यतां सर्वतः
शरद्विमलचन्द्रमंडल - मिवोत्थितं दृश्यते।।३४।।

वृद्धि रहित नख केश प्रभू! रजमल स्पर्श न हो तन को।
विकसित कमल सुचंदन सम है, दिव्य सुगंधित देह विभो!
रवि शशि वज्र दिव्य लक्षण से, शोभित तव शुभरूप महान।
कोटि सूर्य से अधिक चमक, फिर भी दर्शक को प्रिय सुखदान।।३३।।
मोहराग से दूषित हितपथ-द्वेषीजन के सुन उपदेश।
कलुषमना जन हुए जगत में, शुचि होते वे तुमको देख।।
अतिशय युत तव मुख दर्शक, जन को अपने सन्मुख दिखता।
शरद् विमल शशि मंडल सम, तव आस्य चन्द्र है उदित हुआ।।३४।।

नाना प्रकार की क्षुत्पिपासादि वेदनाओं के विनाश हो जाने से आहार न करते हुए भी तृप्तिमान् है। आपके नख और केश नहीं बढ़ते हैं वे उतने ही हर समय रहते हैं। जितने केवलज्ञान की उत्पत्ति के समय होते हैं। रजोमल का स्पर्श भी आपके नहीं है, आपके रूप में विकसित कमल और चन्दन के सदृश दिव्यगंध का उदय है। आपका यह रूप सूर्य, चन्द्रमा, वज्र आदि एक सौ आठ प्रशस्त-चिन्हों से अलंकृत है तथा हजारों सूर्यों के समान भासुर होकर भी नेत्रों को अत्यन्त प्रिय है। आपके रूप को देखकर मोक्ष के परिपंथी शत्रु ऐसे प्रबल राग, मोह आदि दोषों से कलंकित मनवाला जन-समुदाय अतिशय शुद्ध हो जाता है, जो जगत में देखने वालों को चारों दिशाओं में सदा सन्मुख ही शरत्कालीन उदयापन्न—उदित हुए निर्मल चन्द्रमा के समान दिखता है, देवेन्द्रों के नमस्कार

तदेतदमरेश्वर - प्रचलमौलिमालामणि-
स्फुरत्किरणचुम्बनीय - चरणारविन्दद्वयम् ।
पुनातु भगवज्जिनेन्द्र! तव रूपमन्धीकृतं
जगत् सकलमन्यतीर्थगुरुरूपदोषोदयैः।।३५।।

*आलोचना या अंचलिका —***इच्छामि भन्ते! चेइयभत्तिकाउस्सग्गो कओ तस्सालोचेउं, अहलोयतिरियलोयउड्ढलोयम्मि किट्टिमा-किट्टिमाणि जाणि जिणचेइयाणि ताणि सव्वाणि तिसु वि लोएसु भवणवासियवाण-विंतरजोइसियकप्पवासियत्ति चउविहा देवा सपरिवारा दिव्वेण गन्धेण,**

अमरेश्वर के नमस्कार से, मुकुट मणिप्रभ किरणों से।
चुम्बित चरण सरोरुह भगवन् ! तव शुभरूप मनोहर है।।
अन्य देव गुरु तीर्थ उपासक, सकल भुवन यह अन्ध समान।
उन सबको तव रूप पवित्र, करे अरु नेत्र करे अमलान।।३५।।

अंचलिका (बैठकर)

भगवन् ! चैत्यभक्ति अरु कायोत्सर्ग किया उसमें जो दोष।
उनकी आलोचन करने को, इच्छुक हूँ धर मन सन्तोष।।
अधो मध्य अरु ऊर्ध्वलोक में, अकृत्रिम कृत्रिम जिनचैत्य।
जितने भी हैं त्रिभुवन के, चउविध सुर करें भक्ति से सेव।।१।।

के समय मुकुटों की पंक्तियों में जटित मणियों की स्फुरायमान किरणों से आपके दोनों चरण-कमल आलिंगित हैं ऐसा वह आपका रूप, जैनमत से भिन्न अन्य मिथ्या तीर्थों से भी गुरूरूप राग-द्वेष, मोहादि दोषों के प्रादुर्भाव से अन्धे हुए सारे जगत को पवित्र करे ।।३१-३५।।

अंचलिका का अर्थ

हे भगवन्! चैत्यभक्ति और तत् संबंधी कायोत्सर्ग किया, उसकी आलोचना करने की इच्छा करता हूँ। अधोलोक, तिर्यग्लोक और ऊर्ध्वलोक में जो कृत्रिम और अकृत्रिम जितनी प्रतिमाएँ हैं उन सबको तीन लोक में भवनवासी, व्यन्तर, ज्योतिष्क और कल्पवासी ये चार प्रकार के देव अपने-अपने परिवार सहित दिव्य गंध से, दिव्य पुष्पों से, दिव्य धूप से, दिव्य चूर्ण से, दिव्य सुगंधि से और

दिव्वेण पुप्फेण, दिव्वेण धूवेण, दिव्वेण चुण्णेण, दिव्वेण वासेण, दिव्वेण ण्हाणेण, णिच्चकालं अंचंति, पुज्जंति, वंदंति, णमंसंति अहमवि इह संतो तत्थ, संताइं णिच्चकालं अंचेमि, पूजेमि, वंदामि, णमंसामि, दुक्खक्खओ, कम्मक्खओ, बोहिलाहो, सुगइगमणं, समाहिमरणं, जिणगुण-सम्पत्ति होउ मज्झं।

इति श्रीगौतमगणधरवाण्यां प्रथमोऽध्यायः।।१।।

भवनवासि व्यंतर ज्योतिष, वैमानिक सुर परिवार सहित।
दिव्य गंध सुम धूप चूर्ण से, दिव्य न्हवन करते नितप्रति।।
अर्चें पूजें वंदन करते, नमस्कार वे करें सतत।
मैं भी उन्हें यहीं पर अर्चूं, पूजूँ वदूँ नमूँ सतत।।२।।
दुःखों का क्षय कर्मों का क्षय, होवे बोधि लाभ होवे।
सुगतिगमन हो समाधिमरणं, मम जिनगुण संपति होवे।।३।।

इति श्रीगौतमगणधरवाण्यां प्रथमोऽध्यायः।।१।।

दिव्य अभिषेक से सदा अर्चते हैं, पूजते हैं, वन्दते हैं, नमस्कार करते हैं, मैं भी यहीं पर बैठा हुआ वहाँ स्थित प्रतिमाओं को सदा अर्चता हूँ, पूजता हूँ, वन्दता हूँ, नमस्कार करता हूँ। मेरे दुःखों का क्षय हो, कर्मों का क्षय हो, बोधि — रत्नत्रय का लाभ हो, सुगति में गमन हो, समाधिमरण हो एवं जिनगुणसंपत्ति प्राप्त हो ।

इस प्रकार श्री गौतम गणधर वाणी में प्रथम अध्याय पूर्ण हुआ।

1. ॐ ह्रीं श्रीमहावीरतीर्थंकराय नमः।
2. ॐ ह्रीं अर्हं श्रीगौतमस्वामिने नमः।
3. ॐ ह्रीं श्रीजिनमुखोद्भूत-स्याद्वादनयगर्भितद्वादशांगश्रुतज्ञानेभ्यो नमः।
4. ॐ ह्रीं अर्हं दिव्यध्वनिस्वामिने श्रीमहावीरतीर्थंकराय नमः।

(२) कृतिकर्म विधि

(सामायिकस्तवपूर्वककायोत्सर्गश्चतुर्विंशतिस्तवपर्यंतःकृतिकर्मेत्युच्यते[१]।

"सामायिक स्तवपूर्वक कायोत्सर्ग करके चतुर्विंशतिस्तवपर्यन्त जो विधि है उसे कृतिकर्म कहते हैं।"

दोणदं तु जधाजादं वारसावत्तमेव य।
चदुस्सिरं तिसुद्धिं च किदियम्मं पउंजदे[२]।।६०३।।

"यथाजात मुद्राधारी साधु मनवचनकाय की शुद्धि करके दो प्रणाम, बारह आवर्त और चार शिरोनतिपूर्वक कृतिकर्म का प्रयोग करें।")

सिद्ध वंदना के लिए कृतिकर्म प्रयोगविधि

अथ सिद्धवंदनाक्रियायां पूर्वाचार्यानुक्रमेण सकलकर्मक्षयार्थं भावपूजा-वंदनास्तवसमेतं सिद्धभक्तिकायोत्सर्गं करोम्यहम् ।

(इस प्रतिज्ञा वाक्य को बोलकर साष्टांग या पंचांग नमस्कार करके खड़े होकर मुकुलित हाथ जोड़कर तीन आवर्त एक शिरोनति करके मुक्ताशुक्ति मुद्रा से हाथ जोड़कर सामायिक दण्डक पढ़ें।)

कृतिकर्म विधि

अथ सिद्धवंदनाक्रियायां पूर्वाचार्यानुक्रमेण सकलकर्मक्षयार्थं भाव-पूजावंदनास्तवसमेतं सिद्धभक्तिकायोत्सर्गं करोम्यहम् ।

(इस प्रतिज्ञा वाक्य को बोलकर साष्टांग या पंचांग नमस्कार करके खड़े होकर मुकुलित हाथ जोड़कर तीन आवर्त एक शिरोनति करके मुक्ताशुक्ति मुद्रा से हाथ जोड़कर सामायिक दण्डक पढ़ें।)

---

१. मूलाचार गाथा ६०२ की टीका। २. मूलाचार गा. ६०३।

सामायिक दण्डक

णमो अरिहंताणं, णमो सिद्धाणं, णमो आइरियाणं।
णमो उवज्झायाणं, णमो लोए सव्व साहूणं।।

चत्तारि मंगलं—अरिहंत मंगलं, सिद्ध मंगलं, साहु मंगलं, केवलि पण्णत्तो धम्मो मंगलं।

चत्तारि लोगुत्तमा—अरिहंत लोगुत्तमा, सिद्ध लोगुत्तमा, साहु लोगुत्तमा, केवलिपण्णत्तो धम्मो लोगुत्तमा।

सामायिक दण्डक (पद्यानुवाद)

णमो अरिहंताणं, णमो सिद्धाणं, णमो आइरियाणं।
णमो उवज्झायाणं, णमो लोए सव्व साहूणं।।

चत्तारि मंगलं—अरिहंत मंगलं, सिद्ध मंगलं, साहु मंगलं, केवलि पण्णत्तो धम्मो मंगलं।

चत्तारि लोगुत्तमा—अरिहंत लोगुत्तमा, सिद्ध लोगुत्तमा, साहु लोगुत्तमा, केवलिपण्णत्तो धम्मो लोगुत्तमा।

सामायिक दंडक का अर्थ

चार घातिया कर्मों से रहित , अनन्तचतुष्टय सहित, आठ प्रातिहार्य युक्त , समवसरणादि विभूतिसमन्वित, परम औदारिक शरीर के धारक, हितोपदेशी, सर्वज्ञ, वीतराग अरहंतों को , आठ कर्मों से रहित , आठ गुणों सहित सिद्धों को, पंचाचार का स्वयं पालन करने वाले, औरों को पालन कराने वाले छत्तीस गुण समन्वित आचार्यों को, बारह अंग और चौदह पूर्व का अध्ययन और अध्यापन करने-कराने वाले, स्वयं शुद्ध व्रतों से युक्त उपाध्यायों को, अट्ठाईस मूलगुणों से युक्त, मोक्ष पथ का साधन करने वाले लोकवर्ती सम्पूर्ण साधुओं को नमस्कार करता हूँ ।

चत्तारि सरणं पव्वज्जामि—अरिहंत सरणं पव्वज्जामि, सिद्ध सरणं पव्वज्जामि, साहु सरणं पव्वज्जामि, केवलि पण्णत्तो धम्मो सरणं पव्वज्जामि।

अड्ढाइज्जदीवदोसमुद्देसु पण्णारसकम्मभूमिसु जाव अरहंताणं भयवंताणं आदियराणं तित्थयराणं जिणाणं जिणोत्तमाणं केवलियाणं, सिद्धाणं, बुद्धाणं, परिणिव्वुदाणं, अन्तयडाणं, पारयडाणं, धम्माइरियाणं, धम्मदेसियाणं, धम्मणायगाणं, धम्मवरचाउरंग-

---

चत्तारि सरणं पव्वज्जामि—अरिहंत सरणं पव्वज्जामि, सिद्ध सरणं पव्वज्जामि, साहु सरणं पव्वज्जामि, केवलिपण्णत्तो धम्मो सरणं पव्वज्जामि।

ढाई द्वीप अरु दो समुद्र गत, पन्द्रह कर्मभूमियों में।
जो अर्हत भगवंत आदिकर, तीर्थंकर जिन जितने हैं।।१।।

तथा जिनोत्तम केवलज्ञानी, सिद्ध शुद्ध परि निर्वृतदेव।
पूज्य अंतकृत भवपारंगत, धर्माचार्य धर्म देशक।।२।।

धर्म के नायक धर्मश्रेष्ठ, चतुरंग चक्रवर्ती श्रीमान् ।
श्री देवाधिदेव अरु दर्शन, ज्ञान चरित गुण श्रेष्ठ महान।।३।।

अर्हंत, सिद्ध, साधु और केवली प्रणीत धर्म ये चार मंगलरूप हैं—पाप कर्मों को नाश करने वाले और सुख को देने वाले हैं। अर्हंत, सिद्ध, साधु और केवली प्रणीत धर्म ये चारों लोक में उत्तम हैं अर्थात् उत्तम गुणों से युक्त हैं और भव्यों को उत्तम पद की प्राप्ति के कारण हैं। अर्हंत, सिद्ध, साधु और केवली प्रणीत धर्म इन चारों की शरण को प्राप्त होता हूँ अर्थात् ये दुर्जय कर्मरूप शत्रुओं से जायमान—उत्पन्न दुःखरूप समुद्र से भव्य जीवों को तारने वाले हैं इसलिए इन चारों की शरण ग्रहण करता हूँ ।

अढ़ाई द्वीप, दो समुद्र और पन्द्रह कर्मभूमियों में जितने भगवान् , आदितीर्थ के प्रवर्तक, तीर्थंकर, जिन, जिनोत्तम केवलज्ञानी अर्हंत हैं उन सबकी कृतिकर्म पूर्वक वंदना करता हूँ। सम्पूर्ण अर्थों को जानते हैं इसलिए बुध, सुख स्वरूप हैं इसलिए परिनिर्वृत—अशेष कर्म जनित संसार का अन्त करने वाले अथवा

चक्कवट्टीणं, देवाहिदेवाणं, णाणाणं, दंसणाणं, चरित्ताणं सदा करेमि किरियम्मं।

करेमि भंते! सामाइयं सव्वसावज्जजोगं पच्चक्खामि जावज्जीवं तिविहेण मणसा वचसा काएण ण करेमि ण कारेमि कीरंतं पि ण समणुमणामि। तस्स भंते! अइचारं पच्चक्खामि णिंदामि गरहामि अप्पाणं, जाव अरहंताणं, भयवंताणं, पज्जुवासं करेमि ताव कालं पावकम्मं दुच्चरियं वोस्सरामि।

करूँ वंदना मैं कृतिकर्म, विधि से ढाई द्वीप के देव।
सिद्ध चैत्य गुरुभक्ति पठन कर, नमूँ सदा बहुभक्ति समेत।।४।।

भगवन्! सामायिक करता हूँ, सब सावद्य योग तज कर।
यावज्जीवन वचन काय मन, त्रिकरण से न करूँ दुःखकर।।५।।

नहीं कराऊँ नहिं अनुमोदूँ, हे भगवन् ! अतिचारों को।
त्याग करूँ निंदूँ गर्हूं, अपने को मम आत्मा शुचि हो।।६।।

जब तक भगवत् अर्हद्देव की, करूँ उपासना हे जिनदेव।
तब तक पापकर्म दुश्चारित, का मैं त्याग करूँ स्वयमेव।।७।।

एक-एक तीर्थंकर के काल में दुर्धर उपसर्ग को प्राप्त कर एक अन्तर्मुहूर्त में घातियाँ कर्मों को नाश कर, केवलज्ञान उत्पन्न कर और सम्पूर्ण कर्मों का क्षय कर सिद्धपद प्राप्त करने वाले दश-दश अन्तकृत, संसार समुद्र को पार करने वाले इसलिए पारंगत ऐसे जितने सिद्ध हैं उन सब की कृतिकर्म पूर्वक वन्दना करता हूँ तथा धर्म का आचरण करने वाले आचार्यों की, धर्म के उपदेशक उपाध्यायों की और धर्म के नायक सब साधुओं की कृतिकर्म पूर्वक वन्दना करता हूँ एवं धर्मरूप चतुरंग सेना के अधिपति चतुर्णिकाय देवों द्वारा वन्दनीय देवाधिदेव ऐसे अर्हंत, सिद्ध, आचार्य, उपाध्याय और साधुओं की तथा ज्ञान, दर्शन और चारित्र इन तीन मुख्य गुणों की कृतिकर्म पूर्वक वन्दना करता हूँ।

हे भगवन् ! सामायिक (देववन्दना) करता हूँ। सम्पूर्ण सावद्य योग—सब पाप कर्मों का त्याग करता हूँ। जब तक जीऊँ तब तक तीन प्रकार—मन

(९ बार महामंत्र जप)

(मुकुलित हाथ जोड़े हुए ही तीन आवर्त एक शिरोनति करके खड़े-खड़े जिनमुद्रा से सत्ताईस उच्छ्वास में नव बार णमोकार मंत्र का जाप करें। पुनः पंचांग नमस्कार करके खड़े होकर मुक्ताशुक्ति मुद्रा से हाथ जोड़कर तीन आवर्त एक शिरोनति करके 'थोस्सामिस्तव'' पढ़ें।)

—थोस्सामि स्तव —

थोस्सामि हं जिणवरे तित्थयरे केवली अणंतजिणे।
णरपवरलोयमहिए विहुयरयमले महप्पण्णे।।१।।

(९ बार महामंत्र जप)

(मुकुलित हाथ जोड़े हुए ही तीन आवर्त एक शिरोनति करके खड़े-खड़े जिनमुद्रा से सत्ताईस उच्छ्वास में नव बार णमोकार मंत्र का जाप करें। पुनः पंचांग नमस्कार करके खड़े होकर मुक्ताशुक्ति मुद्रा से हाथ जोड़कर तीन आवर्त एक शिरोनति करके 'थोस्सामिस्तव'' पढ़ें।)

(पद्यानुवाद)

स्तवन करूँ जिनवर तीर्थंकर, केवलि अनंत जिन प्रभु का।
मनुज लोक से पूज्य कर्मरज, मल से रहित महात्मन् का।।१।।

से, वचन से और काय से सावद्य योग न करूँगा, न कराऊँगा और न करते हुए को अच्छा मानूँगा । अर्हंत आदिक के कृतिकर्म संबंधी अतीचारों का त्याग करता हूँ । आत्मसाक्षीपूर्वक निन्दा करता हूँ तथा गुरु आदि की साक्षीपूर्वक गर्हा करता हूँ । इतना ही नहीं किंतु जब तक भगवन् अर्हंत देवों की पर्युपासना करूँगा तब तक जिनसे पाप-कर्मों का उपार्जन होता है ऐसे दुराचारों का भी त्याग करता हूं ।

थोस्सामि स्तव का अर्थ

जो देश जिन ऐसे गणधर आदि से श्रेष्ठ हैं, अनंत संसार को जिनने जीत लिया है अथवा जो केवलज्ञान युक्त अनन्तजिन हैं, मनुष्यों में उत्कृष्ट—लोक में जो चक्रवर्ती आदि के द्वारा पूज्य हैं, जिनने ज्ञानावरण और दर्शनावरणरूप मल को नष्ट कर दिया है, जो पूज्यता को प्राप्त हुए हैं अथवा महाप्राज्ञ हैं ऐसे तीर्थंकरों का स्तवन करता हूँ ।।१।।

लोयस्सुज्जोययरे धम्मं तित्थंकरे जिणे वंदे।
अरहंते कित्तिस्से चउवीसं चेव केवलिणो।।२।।
उसहमजियं च वंदे संभवमभिणंदणं च सुमइं च।
पउमप्पहं सुपासं जिणं च चंदप्पहं वंदे।।३।।
सुविहिं च पुप्फयंतं सीयल सेयं च वासुपुज्जं च।
विमलमणंतं भयवं धम्मं संतिं च वन्दामि।।४।।
कुंथुं च जिणवरिंदं अरं च मल्लिं च सुव्वयं च णमिं।
वंदामि रिट्ठणेमिं तह पासं वड्ढमाणं च ।।५।।

लोकोद्योतक धर्म तीर्थंकर, श्री जिन का मैं नमन करूँ।
जिन चउवीस अर्हंत तथा, केवलि गण का गुणगान करूँ।।२।।

ऋषभ, अजित, संभव, अभिनन्दन, सुमतिनाथ का कर वंदन।
पद्मप्रभ जिन श्री सुपार्श्व प्रभु, चन्द्रप्रभ का करूँ नमन।।३।।

सुविधि नामधर पुष्पदंत, शीतल श्रेयांस जिन सदा नमूँ।
वासुपूज्य जिन विमल अनंत, धर्म प्रभु शान्तिनाथ प्रणमूँ।।४।।

जिनवर कुन्थु अरह मल्लि प्रभु, मुनिसुव्रत नमि को ध्याऊँ।
अरिष्ट नेमि प्रभु श्री पारस, वर्धमान पद शिर नाऊँ।।५।।

जो केवलज्ञान द्वारा लोक का प्रकाश करने वाले हैं, उत्तम क्षमा आदि दशलक्षण धर्मरूप तीर्थ के कर्ता हैं, कर्मरूप शत्रुओं को जीतने वाले हैं अथवा केवलज्ञान से समन्वित हैं ऐसे चतुर्विंशति अर्हंतों की वन्दनापूर्वक निज-निज नाम सहित कीर्तन—गुणों का गान करूँगा ।।२।।

ऋषभ, अजित, संभव, अभिनन्दन, सुमति, पद्मप्रभ, सुपार्श्व और चन्द्रप्रभ जिन की वन्दना करता हूँ ।।३।।

सुविधि द्वितीय नाम पुष्पदंत, शीतल, श्रेयांस, वासुपुज्य, विमल, अनंत, धर्म और शान्तिनाथ भगवान् की वन्दना करता हूं ।।४।।

तथा कुंथु, अर, मल्लि, मुनिसुव्रत, नमि, अरिष्टनेमि, पार्श्व और वर्धमान जिनवरों की वन्दना करता हूँ ।।५।।

एवं मए अभित्थुआ विहुयरयमला पहीणजरमरणा।
चउवीसं पि जिणवरा तित्थयरा मे पसीयंतु।।६।।
कित्तिय वंदिय महिया एदे लोगोत्तमा जिणा सिद्धा।
आरोग्गणाणलाहं दिंतु समाहिं च मे बोहिं।।७।।
चंदेहिं णिम्मलयरा आइच्चेहिं अहियपहा सत्ता।
सायरमिव गंभीरा सिद्धा सिद्धिं मम दिसंतु।।८।।

(पुनः तीन आवर्त एक शिरोनति करके वंदना मुद्रा से खड़े-खड़े ही जिस भक्ति की प्रतिज्ञा की थी उस भक्ति को पढ़कर गवासन से बैठकर उस भक्ति की

इस विध संस्तुत विधुत रजोमल, जरा मरण से रहित जिनेश।
चौबीसों तीर्थंकर जिनवर, मुझ पर हों प्रसन्न परमेश।।६।।

कीर्तित वंदित महित हुए ये, लोकोत्तम जिन सिद्ध महान् ।
मुझको दें आरोग्यज्ञान अरु, बोधि समाधि सदा गुणखान।।७।।
चन्द्र किरण से भी निर्मलतर, रवि से अधिक प्रभाभास्वर।
सागर सम गंभीर सिद्धगण, मुझको सिद्धी दें सुखकर।।८।।

(पुनः तीन आवर्त एक शिरोनति करके वंदना मुद्रा से खड़े-खड़े ही जिस भक्ति की प्रतिज्ञा की थी उस भक्ति को पढ़कर गवासन से बैठकर उस भक्ति की

इस तरह मेरे द्वारा स्तवन किये गये, रजोमल से रहित , जरा और मरण से हीन तथा देशजिनों में श्रेष्ठ चौबीस तीर्थंकर मुझ स्तुतिकर्त्ता पर प्रसन्न होवें ।।६।।

वचनों से कीर्तन किये गये, मन से वंदना किये गये और काय से पूजे गये ऐसे ये लोकोत्तम कृतकृत्य जिनेन्द्र मुझे परिपूर्ण ज्ञान, समाधि और बोधि प्रदान करें।।७।।

सम्पूर्ण आवरणों के नष्ट हो जाने से चन्द्रमा से भी अधिक निर्मल, सम्पूर्ण लोक का उद्योत करने वाले केवलज्ञानरूप प्रभा से समन्वित होने से सूर्य से भी अधिक प्रभासमान तथा अलक्षमाण गुणरूप रत्नों से परिपूर्ण होने से सागर के समान गंभीर ऐसे सिद्ध परमात्मा मुझ स्तवक को सर्वकर्मरहित—विप्रमोक्षरूप सिद्धि देवें।।८।।

अंचलिका पढ़ें। यह उपर्युक्त कृतिकर्म विधि सभी भक्तियों के पढ़ने में करनी चाहिए, ऐसा विधान है।

कदाचित् खड़े होकर कृतिकर्म नहीं करना हो तो बैठकर ही सारी विधि करें। अन्तर इतना ही है कि बैठकर कृतिकर्म करने में ९ बार महामंत्र का जाप्य योगमुद्रा से करना होता है।)

लघु सिद्धभक्ति

श्रीमते वर्धमानाय, नमो नमितविद्विषे।
यज्ज्ञानान्तर्गतं भूत्वा, त्रैलोक्यं गोष्पदायते।।१।।

अंचलिका पढ़ें। यह उपर्युक्त कृतिकर्म विधि सभी भक्तियों के पढ़ने में करनी चाहिए, ऐसा विधान है।

कदाचित् खड़े होकर कृतिकर्म नहीं करना हो तो बैठकर ही सारी विधि करें। अन्तर इतना ही है कि बैठकर कृतिकर्म करने में ९ बार महामंत्र का जाप्य योगमुद्रा से करना होता है।)

***—लघु सिद्धभक्ति—*(पद्यानुवाद)**

श्रीमन् वर्द्धमान को प्रणमूँ, जिनने अरि को नमित किया।
जिनके पूर्ण ज्ञान में त्रिभुवन, गोखुर सम दिखलाई दिया।।१।।

लघु सिद्धभक्ति का अर्थ

जिनके अनन्त ज्ञानादि अन्तरंग विभूति और समवसरण आदि बहिरंग विभूति विद्यमान है, जिनने उपसर्ग करने वाले संगमदेव आदि शत्रुओं का सिर अपने चरणों में झुकाया है, ऐसे अंतिम तीर्थंकर भगवान वर्धमान जिनेन्द्र को नमस्कार हो। जिनके ज्ञान में तीन लोक गोष्पद के समान झलकता है।।१।।

तप से सिद्ध, नय से सिद्ध, संयम से सिद्ध, चारित्र से सिद्ध, ज्ञान से सिद्ध और दर्शन से सिद्ध हुए ऐसे सब सिद्धों को मैं शिर झुकाकर नमस्कार करता हूँ।।२।।

तवसिद्धे णयसिद्धे संजमसिद्धे चरित्तसिद्धे य।
णाणम्मि दंसणम्मि य सिद्धे सिरसा णमंसामि।।२।।

–अंचलिका–

इच्छामि भंते! सिद्धभत्तिकाओसग्गो कओ तस्सालोचेउं, सम्मणाण-सम्मदंसण-सम्मचारित्तजुत्ताणं, अट्ठविहकम्मविप्प-मुक्काणं, अट्ठगुणसंपण्णाणं, उड्ढलोयमत्थयम्मि पयिट्ठियाणं, तवसिद्धाणं, णयसिद्धाणं, संजमसिद्धाणं, चरित्तसिद्धाणं, अतीदाणागदवट्टमाण–

तप से सिद्ध नयों से सिद्ध, सुसंयमसिद्ध चरित सिद्धा।
ज्ञान सिद्ध दर्शन से सिद्ध, नमूँ सब सिद्धों को शिरसा।।२।।

—अंचलिका —

हे भगवन् ! श्री सिद्धभक्ति का, कायोत्सर्ग किया उसका।
आलोचन करना चाहूँ जो, सम्यग् रत्नत्रय युक्ता।।१।।
अठविध कर्म रहित प्रभु ऊर्ध्व-लोक मस्तक पर संस्थित जो।
तप से सिद्ध नयों से सिद्ध, सुसंयमसिद्ध चरित सिद्ध जो।।२।।

अंचलिका का अर्थ

हे भगवान! मैंने सिद्धभक्ति सम्बन्धी कायोत्सर्ग किया उसकी आलोचना करने की इच्छा करता हूँ, जो सम्यग्ज्ञान, सम्यग्दर्शन और सम्यक्चारित्र से युक्त हैं, आठ प्रकार के कर्मों से मुक्त हैं, आठ गुणों से सम्पन्न हैं, ऊर्ध्व लोक के मस्तक पर प्रतिष्ठित हैं, तप से सिद्ध हैं, नय से सिद्ध हैं, संयम से सिद्ध हैं, चारित्र से सिद्ध हैं, अतीत, अनागत और वर्तमान इन तीनों कालों से सिद्ध हैं, ऐसे सब सिद्धों की नित्यकाल अर्चा करता हूँ, पूजा करता हूँ, वन्दना करता हूँ, नमस्कार करता हूँ, मेरे दुःखों का क्षय हो, कर्मों का क्षय हो, बोधि—रत्नत्रय

कालत्तयसिद्धाणं, सव्वसिद्धाणं, णिच्चकालं अंचेमि पूजेमि वंदामि णमंसामि दुक्खक्खओ कम्मक्खओ बोहिलाहो सुगइगमणं समाहिमरणं जिणगुणसंपत्ती होउ मज्झं।[१]

इति श्रीगौतमगणधरवाण्यां द्वितीयोऽध्यायः।।२।।

भूत भविष्यत् वर्तमान, कालत्रय सिद्ध सभी सिद्धा।
नित्यकाल मैं अर्चूं पूजूँ, वंदूँ नमूँ भक्ति युक्ता।।३।।
दुःखों का क्षय कर्मों का क्षय, हो मम बोधि लाभ होवे।
सुगतिगमन हो समाधिमरणं, मम जिनगुण संपति होवे।।४।।

इति श्री गौतमगणधरवाण्यां द्वितीयोऽध्यायः।।२।।

का लाभ हो, सुगति में गमन हो, समाधिमरण हो और जिनेन्द्र के गुणों की सम्पत्ति प्राप्त हो।

इस प्रकार श्रीगौतम गणधर वाणी में द्वितीय अध्याय पूर्ण हुआ।

धर्म एक सर्वश्रेष्ठ समुद्र है

चारुगुणसलिलपउरं संजमउत्तुंगउम्मिसंघायं।
णिम्मलतवपायालं समिदि महामच्छ संछण्ण।।
जमणियमदीवपउरं वरगुत्तिगंभीर सीलमज्जादं।
णिव्वाणरयणणिवहं धम्मसमुद्दं णमंसामि।।

अर्थ–सुन्दर गुणों रूप जल की प्रचुरता से संयुक्त, संयम रूप उन्नत ऊर्मि समूहों से सहित, निर्मल तपरूप पातालों से परिपूर्ण, समितियों रूपी महामत्स्यों से व्याप्त, यम-नियम रूप प्रचुर द्वीपों (जलजन्तु विशेषों) से संयुक्त, श्रेष्ठ गुप्तियों एवं गंभीर शीलरूप मर्यादा से सहित और निर्वाणरूप रत्नसमूह से सम्पन्न ऐसे धर्मरूप समुद्र को मैं नमस्कार करता हूँ।

–जम्बूद्वीपपण्णत्ति-आचार्य पद्मनंदि

---

१. दैवसिक प्रतिक्रमण से उद्धृत।

(३) सुदं मे आउस्संतो!

(श्रावक धर्म)

पढमं ताव सुदं मे आउस्संतो! इह खलु समणेण भयवदा महदि-महावीरेण महा-कस्सवेण सव्वण्ह-णाणेण सव्वलोय-दरसिणा सावयाणं साावियाणं खुड्डुयाणं खुड्डियाणं कारणेण पंचाणुव्वदाणि तिण्णि गुणव्वदाणि चत्तारि सिक्खावदाणि बारसविहं गिहत्थधम्मं सम्मं उवदेसियाणि। तत्थ इमाणि पंचाणुव्वदाणि पढमे अणुव्वदे थूलयडे पाणादि-

पद्यानुवाद

हे आयुष्मन्तों! पहले ही यहाँ मैंने सुना वीर प्रभु से।
उन महाश्रमण भगवान् महतिमहावीर महाकाश्यप जिनसे।।
सर्वज्ञज्ञानयुत सर्वलोकदर्शी उनने उपदेश दिया।
श्रावक व श्राविका क्षुल्लक अरु क्षुल्लिका इन्हों के लिए कहा।।१।।
ये पांच अणुव्रत तीन गुणव्रत, चउ शिक्षाव्रत बारह विध।
हैं सम्यक् श्रावक धर्म इन्हीं, में जो ये अणुव्रत पांच कथित।।
पहला अणुव्रत स्थूलतया, प्राणीवध से विरती होना।
दूजा अणुव्रत स्थूलतया, असत्यवच से विरती होना।।२।।

सुदं मे आउस्संतो ! (श्रावक धर्म) का अर्थ

हे आयुष्मानों ! मैंने (गौतम ने) महाकश्यप गोत्रीय, सर्वज्ञ, सर्वदर्शी श्रमण भगवान महावीर से श्रावक, श्राविका, क्षुल्लक और क्षुल्लिकाओं के लिए पांच अणुव्रत, तीन गुणव्रत और चार शिक्षाव्रत यह बारह प्रकार का गृहस्थ धर्म सुना है। उसमें ये पांच अणुव्रत हैं—पहले अणुव्रत में स्थूल प्राणातिपात से विरमण—त्याग है, दूसरे अणुव्रत में स्थूल मृषावाद से विरमण—त्याग है, तीसरे अणुव्रत में स्थूल अदत्तादान से विरमण—त्याग है, चौथे अणुव्रत में स्वदार सन्तोष है तथा परदार गमन से विरमण—त्याग है और पांचवें अणुव्रत में स्थूल इच्छाकृत परिमाण करना है, ये पांच अणुव्रत हैं।

वादादो वेरमणं, विदिए अणुव्वदे थूलयडे मुसावादादो वेरमणं, तदिए अणुव्वदे थूलयडे अदत्ता-दाणादो वेरमणं, चउत्थे अणुव्वदे थूलयडे सदारसंतोस-परदारा-गमणवेरमणं कस्स य पुणु सव्वदो विरदी, पंचमे अणुव्वदे थूलयडे इच्छाकद-परिमाणं चेदि, इच्चेदाणि पंच अणुव्वदाणि।

तत्थ इमाणि तिण्णि गुणव्वदाणि, तत्थ पढमे गुणव्वदे दिसिविदिसि पच्चक्खाणं, विदिए गुणव्वदे विविध-अणत्थ-दण्डादो वेरमणं, तदिए गुणव्वदे भोगोपभोग-परिसंखाणं चेदि, इच्चेदाणि तिण्णि गुणव्वदाणि।

तत्थ इमाणि चत्तारि सिक्खावदाणि, तत्थ पढमे सामाइयं, विदिए पोसहो-वासयं, तदिए अतिथिसंविभागो, चउत्थे सिक्खावदे पच्छिम-सल्लेहणा-मरणं, तिदियं अब्भोवस्साणं चेदि।

तीजा अणुव्रत स्थूलतया, बिन दी वस्तू को नहिं लेना।
चौथा अणुव्रत स्थूलतया परदारा से विरती होना।।
निजपत्नी में संतुष्टी या सब स्त्रीमात्र से रति तजना।
पंचम अणुव्रत स्थूलतया इच्छाकृत परीमाण धरना।।३।।

त्रय गुणव्रत में पहला गुणव्रत, दिश विदिशा का प्रमाण करना।
दूजा गुणव्रत नाना अनर्थ दण्डों से नित विरती धरना।।
तीजा गुणव्रत भोगोपभोग, वस्तू की संख्या कर लेना।
ये तीन गुणव्रत कहे, पुनः चारों शिक्षाव्रत को सुनना।।४।।

उनमें ये तीन गुणव्रत हैं—पहला गुणव्रत दिशा और विदिशा का प्रत्याख्यान—मर्यादारूप नियम है, दूसरे गुणव्रत में विविध अनर्थदंडों से विरमण—त्याग है और तीसरे गुणव्रत में भोग और उपभोग वस्तुओं का परिसंख्यान—संख्या हैं ये तीन गुणव्रत हैं।

उनमें ये चार शिक्षाव्रत हैं—पहले में सामायिक, दूसरे में प्रोषधोपवास, तीसरे में अतिथिसंविभाग और चौथे शिक्षाव्रत में अन्तिम सल्लेखनापूर्वक—मरण और तीसरा अभ्रावकाश का है।

उपर्युक्त बारह व्रतों के धारक—जिसने जीव–अजीव तत्त्व को समझ लिया है तथा जिसने पुण्य–पाप, आस्रव–संवर, निर्जरा–बंध और मोक्ष इन

से अभिमद-जीवाजीव-उवलद्ध-पुण्णपाव-आसव-संवर-णिज्जर-बंधमोक्ख-महिकुसले धम्माणु-रायरत्तो पिमाणु-रागरत्तो (पेम्माणुरागरत्तो) अट्ठि-मज्जाणुरायरत्तो मुच्छिदट्ठे गिहिदट्ठे विहिदट्ठे पालिदट्ठे सेविदट्ठे इणमेव णिग्गंथपावयणे अणुत्तरे सेअट्ठे सेवणुट्ठे-

णिस्संकिय-णिक्कंखिय, णिव्विदिगिंछी य अमूढदिट्ठी य।
उवगूहण ट्ठिदिकरणं, वच्छल्ल-पहावणा य ते अट्ठ।।१।।

पहला शिक्षाव्रत सामायिक, दूजा प्रोषध उपवास कहा।
तीजा है अतिथि संविभाग, चौथा सल्लेखनमरण कहा।।
शिक्षाव्रत चार कहे पुनरपि, अभ्रावकाश तृतीयव्रत है।
जघन्य श्रावक से उत्तम तक, ये बारह व्रत तरतममय हैं।।५।।
इसमें अभिमत जीव रु अजीव, उपलब्ध पुण्य अरु पाप कहे।
आस्रव संवर निर्जर व बंध, अरु मोक्ष कुशल नव तत्त्व रहें।।
इनमें धर्मानुराग से रत, प्रेमानुराग में रागी हो।
अस्थीमज्जा के सदृश धर्म के, अनुराग में रागी हो।।६।।
ममतापूर्वक गृहीत वस्तु में, गृहीत वस्तु अरु कृतवस्तू में।
अपने पालन किये पदार्थ में, अपने सेवित सुपदारथ में।।
निर्ग्रंथों के भी प्रवचन में, उत्तम अरु हितकर पदार्थ में।
सेवन की प्रवृत्ती रूप क्रिया में दोष हुए सो मिथ्या हों।।७।।

तत्त्वों को उपलब्ध कर लिया है ऐसे नव पदार्थों के विषय में अभिकुशल–निपुण व्यक्ति में धर्मानुराग से अनुरक्त होकर भी लक्ष्मी के अनुराग में अनुरक्त है। (गृहस्थ होने से परिग्रह का त्यागी नहीं है) एवं अस्थिमज्जा के समान धर्म के अनुराग से अनुरक्त है। (जिस प्रकार सात धातुओं में अस्थि—हड्डी मज्जा नामक धातु से निरन्तर संलग्न रहती है, उसी तरह सहधर्मियों के साथ प्रीति का होना, ऐसी सघन प्रीति को अस्थिमज्जा प्रीति कहते हैं।) ऐसा गृहस्थ मूर्च्छितार्थ—ममतापूर्वक ग्रहण किये गये पदार्थ में, गृहीतार्थ—सामान्यरूप से ग्रहण किये गये पदार्थ में, विहितार्थ—अपने द्वारा किये गये पदार्थ में, पालितार्थ—

सव्वेदाणि पंचाणुव्वदाणि तिण्णि गुणव्वदाणि चत्तारि सिक्खावदाणि वारसविहं गिहत्थधम्म-मणुपाल-इत्ता-

दंसण वय सामाइय, पोसह सचित्त राइभत्ते य।
बंभारंभ परिग्गह, अणुमण-मुद्दिट्ठ देसविरदो य।।१।।
महु-मंस-मज्ज-जूआ, वेसादि-विवज्जणासीलो।
पंचाणुव्वय-जुत्तो, सत्तेहिं सिक्खावएहिं संपुण्णो।।२।।

जो एदाइं वदाइं धरेइ सावया सावियाओ वा खुड्डुय खुड्डियाओ वा अट्ठदह*-भवण-वासिय-वाणविंतर-जोइसिय-सोहम्मीसाण-देवीओ वदिक्क-मित्तउवरिम-अण्णदर-महड्ढियासु देवेसु उव्वज्जंति।

निःशंकित निःकांक्षित अरु निर्विचिकित्सा अमूढ़दृष्टी हैं।
उपगूहन स्थितीकरण वात्सल प्रभावना अठ अंग कहे।।
ये सभी पांच अणुव्रत त्रयगुणव्रत चउ शिक्षाव्रत माने हैं।
बारहविध गृहस्थधर्मों का अनुपालन श्रावक करते हैं।।८।।
दर्शनव्रत सामायिक प्रोषध सचित्तत्याग निशिभुक्ति त्यजी।
ब्रह्मचर्य व आरंभ परिग्रह अनुमति उद्दिष्ट त्याग ये देशव्रती।।
मधु मांस मद्य जुआ वेश्यादिक व्यसनविवर्जनशील गृही।
पंचाणुव्रतयुत शिक्षाव्रत आदिक सातों से जो पूर्ण वही।।९।।

अपने द्वारा पालन किये गये पदार्थ में, सेवितार्थ—अपने द्वारा सेवित—उपयोग में आने वाले पदार्थ में, निर्ग्रंथ प्रवचन—मुनियों के प्रवचन में, अनुत्तर—सर्वश्रेष्ठ, श्रेयो—कल्याणकारी पदार्थ में, सेवितार्थ—सेवन प्रवृत्तिरूप क्रिया में (प्रमाद से जो हुआ हो वह मिथ्या होवे) ऐसा अभिप्राय है।

निःशंकित, निःकांक्षित, निर्विचिकित्सा, अमूढ़दृष्टि, उपगूहन, स्थितिकरण, वात्सल्य और प्रभावना ये सम्यक्त्व के आठ अंग हैं।

---

* १. पृथ्वी २. जल ३. अग्नि ४. वायु ५. वनस्पति ६. दोइंद्रिय ७. तीनइंद्रिय ८. चारइंद्रिय ९. निगोद १०. असंज्ञीपंचेन्द्रिय ११. कुभोगभूमि १२. म्लेक्षज १३. पंचेंद्रियतिर्यंच १४. नारकी १५. नपुंसक १६. स्त्री १७. सुभोग भूमि १८. और मनुष्य, इन अठारह स्थानों में अणुव्रती नहीं जाते हैं एवं भवनवासी, व्यंतर, ज्योतिषी देवों में और सौधर्म-ईशान स्वर्ग की देवियों में भी अणुव्रती नहीं जन्मते हैं।

तं जहा—सोहम्मी-साण-सणक्कुमार-माहिंद-बंभबंभुत्तर-लांतवकापिट्ठ-सुक्क-महासुक्क-सतार-सहस्सार-आणत-पाणत-आरण-अच्चुत-कप्पेसु उववज्जंति।

अडयंबर-सत्थधरा, कडयंगद-बद्धनउड-कयसोहा।
भासुर - वर - बोहिधरा, देवा य महड्ढिया होंति।।१।।

जो श्रावक और श्राविका या क्षुल्लक व क्षुल्लिका इन व्रत को।
धारण कर अठरहस्थान व भावन व्यंतर में नहिं जाते वो।
ज्योतिषियों में सौधर्म ईशान देवियों में नहिं जाते हैं।
उपरिम वैमानिक देवों में वे महाऋद्धिधर होते हैं।।१०।।
वह यह सौधर्मैशान सनत्कुमार माहेन्द्र ब्रह्म दिव में।
ब्रह्मोत्तर लांतव कापिष्ठ रु शुक्र अरु महाशुक्र दिव में।।
पुनि शतार सहस्रार आनत प्राणत आरण अच्युत दिव में।
इन सोलह स्वर्गों मे ही ये सदृष्टि सचेलक उपजत हैं।।११।।
वे कटक व बाजूबन्द मुकुट से युत आडंबर शस्त्र धरें।
भासुरवर बोधि धरें बहु ऋद्धी सहित महर्द्धिक देव बनें।।
उत्कृष्टपने से दो त्रय भव व जघन्य से सात आठ भव लें।
फिर मानव से देवपद ले सुदेवपद से सुमनुष्य भव लें।।१२।।

ये पांच अणुव्रत, तीन गुणव्रत और चार शिक्षाव्रत सब मिलकर बारह प्रकार के गृहस्थ धर्म का अनुपालन कर दर्शन, व्रत, सामायिक, प्रोषध, सचित्त विरमण, रात्रिभक्त विरमण, ब्रह्मचर्य, आरंभ निवृत्ति, परिग्रह विरति, अनुमतित्याग और उद्दिष्टत्याग ये देशव्रत के ग्यारह स्थान है।

मधु, मांस, मद्य, जुआ, वेश्या आदि व्यसन इनका त्यागी पांच अणुव्रतों से और सात शीलों से परिपूर्ण श्रावक होता है।

जो श्रावक, श्राविका, क्षुल्लक और क्षुल्लिका इन व्रतों को धारण करते हैं वे अठारह स्थानों में, भवनवासी, वाण व्यन्तर, ज्योतिषी और सौधर्म–ईशान स्वर्ग की देवियों का व्यतिक्रम कर उपरिम अन्यतर महर्द्धिक देवों में उत्पन्न होते हैं।

उक्कस्सेण दोतिण्णि-भव-गहणाणि जहण्णेण सत्तट्ठभव-गहणाणि तदो सुमणु-सुत्तादो सुदेवत्तं सुदेवत्तादो सुमाणुसत्तं तदो साइहत्था[1] पच्छा णिग्गंथा होऊण सिज्झंति बुज्झंति मुंचंति परिणिव्वाणयंति सव्व-दुक्खाणमंतं करेंति।[2]

इति श्रीगौतमगणधरवाण्यां तृतीयोऽध्यायः।।३।।

फिर सद्गृहस्थ निर्ग्रंथ मुनी हो सिद्ध-बुद्ध हो जाते हैं।
मुक्ती पाते कृतकृत्य बने सब दुःखों का क्षय करते हैं।।
जब तक मुनिव्रत नहीं धरूँ, मुनियों को वन्दन करता हूँ।
सर्व दुःखों का अंत करूं, शिवपद की वाञ्छा करता हूँ।।१३।।

इति श्रीगौतमगणधरवाण्यां तृतीयोऽध्यायः।।३।।

यही बताते हैं—सौधर्म–ईशान कल्प, सनत्कुमार–महेन्द्र, ब्रह्म–ब्रह्मोत्तर, लान्तव–कापिष्ठ कल्प, शुक्र–महाशुक्र कल्प, सतार–सहस्रार, आनत, प्राणत, आरण और अच्युत कल्प में उपजते–उत्पन्न होते हैं।

ऐसे दैदीप्यमान ज्ञान के धारक महर्द्धिक देव होते हैं। जो उत्कर्षपने से दो, तीन भव ग्रहण करते हैं। जघन्य से सात–आठ भव ग्रहण करते हैं। पश्चात् वे सुमनुष्यत्व से सुदेवत्व और सुदेवत्व से सुमनुष्यत्व को उससे साइहत्थ–साधितार्थ अथवा सद्गृहस्थ होकर पश्चात् निर्ग्रन्थ मुनि होकर सिद्ध होते हैं, बुद्ध होते हैं, मुक्त होते हैं और परिनिर्वाण को प्राप्त होते हैं, सब दुःखों का अन्त करते हैं।

इस प्रकार श्रीगौतम गणधर वाणी में तृतीय अध्याय पूर्ण हुआ।

---

१. साधितार्थाः इति वा पाठः छायायां। २. यतिप्रतिक्रमण-पाक्षिक प्रतिक्रमण से उद्धृत।

(४) एकादश प्रतिमा

इच्छामि भंत्ते! देवसियं आलोचेउं। तत्थ-

दंसण-वय-सामाइय-पोसह-सच्चित्त-रायभत्ते य।
बंभारंभ-परिग्गह-अणुमण-मुद्दिट्ठ देसविरदे य।।
पंचुंबर-सहियाइं सत्त वि वसणाइं जो विवज्जेइ।
सम्मत्त-विसुद्धमई सो दंसण-सावओ भणियो।।१।।

पद्यानुवाद

–दोहा–

हे भगवन्! दिन भर हुये, दोष विशोधन हेत।
करता आलोचन विधी, श्रद्धा भक्ति समेत।।१।।

दर्शन व्रत सामायिक प्रोषध, सचित्तत्याग निशिभुक्ति त्यजी।
ब्रह्मचर्य व आरम्भ परिग्रह, अनुमति उद्दिष्टत्यागि ये देशव्रती।।
जो पंच उदुंबुर फल तजता, अरु सप्त व्यसन को तजता है।
सम्यक्त्व शुद्धमति वह श्रावक, दर्शनप्रतिमायुत होता है।।१।।

एकादश प्रतिमा के नाम एवं लक्षण

ग्यारह प्रतिमाओं के नाम—(१) दर्शन (२) व्रत (३) सामायिक (४) प्रोषधोपवास (५) सचित्तत्याग (६) रात्रिभुक्ति त्याग अर्थात् दिवा मैथुन त्याग (७) ब्रह्मचर्य (८) आरंभ त्याग (९) परिग्रह त्याग (१०) अनुमति त्याग (११) उद्दिष्ट त्याग।

(१) दर्शन प्रतिमा—जो संसार, शरीर, भोगों से विरक्त, शुद्ध सम्यग्दर्शन का धारी, पंचपरमेष्ठी के चरण कमलों की शरण ग्रहण करने वाला और सच्चे मार्ग पर चलने वाला है, वह दर्शन प्रतिमाधारी कहलाता है। वह श्रावक पंच-उदुम्बर और सप्तव्यसनों का तथा रात्रि में चारों प्रकार के आहार का त्यागी होता है।

पंच य अणुव्वयाइं गुणव्वयाइं हवंति तह तिण्णि।
सिक्खावयाइं चत्तारि जाण विदियम्मि ठाणम्मि।।२।।
जिणवयण-धम्म-चेइय-परमेट्ठि-जिणालयाणं णिच्चं पि।
जं वंदणं तियालं कीरइ सामाइयं तं खु।।३।।
उत्तम-मज्झ-जहण्णं तिविहं पोसह-विहाण-मुद्दिट्ठं।
सगसत्तीए मासम्मि चउसु पव्वेसु कायव्वं।।४।।

अणुव्रत सुपाँच गुणव्रत त्रय अरु, शिक्षाव्रत चार कहे जाते।
इन बारहव्रत को व्रतप्रतिमा-धारी श्रावक धारण करते।।२।।

जिनवचन धर्म प्रतिमा जिनगृह परमेष्ठी पाँच इनको नित ही।
जो त्रय कालिक वंदन करते उनके सामायिक प्रतिमा ही।।३।।

उत्तम मध्यम जघन्य त्रयविध भाषित प्रोषध निजशक्ति से।
प्रति महिने चारों पर्वों में करते वे प्रोषध व्रत धरते।।४।।

---

(२) व्रत प्रतिमा—जो शल्यरहित होकर निरतिचार पाँच अणुव्रत, तीन गुणव्रत और चार शिक्षाव्रतों का पालन करता है, वह व्रत प्रतिमाधारी कहलाता है। इस प्रतिमा में सामायिक व्रत में दो समय सामायिक और विधिवत् देव-पूजन करना आवश्यक है।

(३) सामायिक प्रतिमा—जिनवाणी, जिनधर्म, जिनबिम्ब, पंचपरमेष्ठी और कृत्रिम–अकृत्रिम जिनालयों की प्रतिदिन प्रातः, मध्यान्ह और सायंकाल इन तीनों कालों में कम से कम दो घड़ी तक विधिपूर्वक वन्दना करना सामायिक प्रतिमा कहलाती है।

(४) प्रोषधोपवास प्रतिमा—प्रत्येक महीने की दोनों अष्टमी और दोनों चतुर्दशी, ऐसे चारों पर्वों में अपनी शक्ति को न छिपाकर धर्मध्यान में लीन होते हुए प्रोषध को अथवा उपवास को अवश्य करना प्रोषध प्रतिमा का लक्षण है। प्रोषध का अर्थ एक बार भोजन करना होता है।

जं वज्जिजदि हरिदं तय-पत्त-पवाल-कंद-फल-बीयं।
अप्पासुगं च सलिलं सच्चित्त-णिव्वत्तिमं ठाणं।।५।।

मण-वयण-काय-कदकारिदाणुमोदेहिं मेहुणं णवधा।
दिवसम्मि जो विवज्जदि गुणम्मि सो सावओ छट्ठो।।६।।

पुव्वुत्त-णवविहाणं णि (वि) मेहुणं सव्वदा विवज्जंतो।
इत्थिकहादि-णिवित्ती सत्तम-गुणबंभचारी सो।।७।।

जो हरित छाल पत्ते कोंपल फल कंद बीज को हैं तजते।
प्रासुक कर हरित व जल लेते वे सचित्त त्याग प्रतिमा धरते।।५।।

मन वचन काय कृत कारित अनुमति नवविध से जो मैथुन को।
दिन में तजते वे भव्य दिवा-मैथुन विरती प्रतिमाधर हों।।६।।

इन नवविध भी मैथुन को जो, तजकर ब्रह्मचर्य पूर्ण धरते।
स्त्री विकथादि रहित होकर, वे सप्तम प्रतिमाधारी बनते।।७।।

उत्कृष्ट प्रोषध प्रतिमा में सप्तमी और नवमी को एक बार शुद्ध भोजन और अष्टमी को उपवास होता है। जघन्य में अष्टमी को एक बार भोजन होता है। मध्यम में कई भेद हो जाते हैं।

(५) सचित्तत्याग प्रतिमा—कच्चे फल-फूल, बीज, पत्ते आदि नहीं खाना, इन्हें छिन्न-भिन्न करके, लवण आदि मिलाकर या गरम आदि करके प्रासुक बनाकर खाना, पानी भी प्रासुक करके पीना सचित्तत्याग प्रतिमा कहलाती है।

(६) रात्रिभुक्ति त्याग प्रतिमा—मन, वचन, काय और कृत, कारित, अनुमोदना, इन नौ प्रकारों से जो श्रावक दिन में मैथुन का त्याग करते हैं वे दिवाभुक्त त्यागी प्रतिमाधारी हैं। *अथवा* रत्नकरण्ड श्रावकाचार से-

रात्रिभुक्ति त्याग प्रतिमा—जो दयालु श्रावक रात्रि में अन्न, खाद्य, लेह्य, पेय इन चारों आहारों का त्याग[१] कर देता है, वह रात्रिभुक्ति त्यागी छठी प्रतिमाधारी श्रावक होता है।

---

१. यद्यपि पहली प्रतिमा में ही रात्रि में चारों प्रकार के आहार का त्याग हो जाता है, फिर भी पुत्र-पौत्रादि कुटुम्बीजन अथवा अन्य लोगों के निमित्त से कारित और अनुमोदना संबंधी जो दोष लगता था, उनका यहाँ त्याग हो जाता है।

जं किं पि गिहारंभं बहु थोवं वा सया विवज्जेदि।
आरंभ-णिवित्तमदी सो अट्ठम-सावओ भणिओ।।८।।

मोत्तूण वत्थमित्तं परिग्गहं जो विवज्जदे सेसं।
तत्थ वि मुच्छं ण करदि वियाण सो सावओ णवमो।।९।।

पुट्ठो वापुट्ठो वा णियगेहिं परेहिं सग्गिह-कज्जे।
अणु-मणणं जो ण कुणदि वियाण सो सावओ दसमो।।१०।।

जो अल्प बहुत या कुछ भी गृह, आरम्भ सदा हैं तज देते।
आरंभ त्याग अष्टमप्रतिमाधारी वे ही श्रावक होते।।८।।

जो वस्त्रमात्र परिग्रह रखकर अवशेष परिग्रह तजते हैं।
जो है उसमें नहिं ममत करें, वे नवमी प्रतिमा धरते हैं।।९।।

जो स्वपर जनों द्वारा पूछे या नहिं पूछे गृह कार्यों में।
अनुमति नहिं देते वे अनुमतित्यागी प्रतिमाधारी श्रुत में।।१०।।

---

(७) ब्रह्मचर्य प्रतिमा—जो पूर्वोक्त नौ प्रकार के मैथुन को सर्वथा त्याग करता हुआ स्त्री कथा आदि से भी निवृत हो जाता है वह सातवें प्रतिमारूप गुण का धारी ब्रह्मचारी श्रावक है।

(८) आरंभ त्याग प्रतिमा—हिंसा के कारण नौकरी, खेती, व्यापार आदि गृहकार्यसंबंधी सब तरह की क्रियाओं का त्याग करने वाला श्रावक आरंभत्यागी प्रतिमाधारी कहलाता है। इस प्रतिमा में दान, पूजन आदि धर्म कार्य संबंधी आरंभ कार्य कर सकते हैं। घर में रहकर भी धर्म साधन कर सकते हैं, घर छोड़कर भी कर सकते हैं।

(९) परिग्रह त्याग प्रतिमा—जो वस्त्रमात्र परिग्रह को रखकर शेष सब परिग्रह को छोड़ देता है और स्वीकृत वस्त्रमात्र परिग्रह में भी मूर्च्छा नहीं करता है उसे परिग्रहत्याग नवमीं प्रतिमाधारी श्रावक जानना चाहिए।

(१०) अनुमति त्याग प्रतिमा—स्वजनों से और परजनों से पूछा गया अथवा नहीं पूछा गया जो श्रावक अपने गृहसम्बन्धी कार्य में अनुमोदना नहीं करता है, उसे अनुमति त्याग दसवीं प्रतिमाधारी श्रावक जानना चाहिए।

णवकोडीसु विसुद्धं भिक्खा-यरणेण भुंजदे भुंजं।
जायण-रहियं जोग्गं एयारस सावओ सो दु।।११।।

एयारसम्मि ठाणे उक्किट्ठो सावओ हवे दुविहो।
वत्थेयधरो पढमो कोवीणपरिग्गहो विदिओ।।१२।।

तव-वय-णियमा-वासय-लोचं कारेदि पिच्छ गिण्हेदि।
अणुवेहा- धम्मझाणं करपत्ते एयठाणम्मि।।१३।।

नवकोटिशुद्ध याचना रहित आहार योग्य परघर में जो।
भिक्षावृत्ति से ग्रहण करें ग्यारहवीं प्रतिमाधारी वो।।११।।

उद्दिष्टत्यागप्रतिमाधारी उत्तम श्रावक दो विध जानो।
कौपीन दुपट्टाधर क्षुल्लक कौपीनमात्र ऐलक मानो।।१२।।

तप व्रत नियमावश्यक व लोच करते ऐलक पिच्छी धरते।
करपात्राहारी एक बार अनुप्रेक्षा धर्मध्यान करते।।१३।।

---

(११) उद्दिष्ट त्याग प्रतिमा—जो अपने घर को छोड़कर मुनियों के संघ में जाकर गुरु के पास दीक्षा लेकर तपश्चरण करता है और नवकोटि विशुद्ध भिक्षावृत्ति से आहार ग्रहण करता है, निमंत्रण से भोजन नहीं करता है, खंड वस्त्र धारण करता है, वह उद्दिष्ट त्यागी प्रतिमाधारी कहलाता है।

इस ग्यारहवीं प्रतिमाधारी के दो भेद हैं—क्षुल्लक और ऐलक। क्षुल्लक एक लंगोटी और खंड वस्त्र (चादर) रखते हैं। सिर और दाढ़ी मूँछ के बालों को कैंची से या उस्तरा से कटा लेते हैं अथवा केशलोंच भी कर लेते हैं। पिच्छी उपकरण से स्थान आदि का प्रतिलेखन करते हैं, एक बार बैठकर थाली आदि में भोजन करते हैं। भिक्षावृत्ति से भोजन करते हैं[१] अथवा गुरुओं के आहारार्थ निकल जाने पर उनके पीछे-पीछे आहार के लिए चले जाते हैं। ऐलक एक लंगोटी मात्र रखते हैं, नियम से केशलोंच करते हैं और करपात्र में आहार लेते हैं। इतना ही इन दोनों में अंतर है।।१२-१३।।

---

१. वसुनंदि श्रावकाचार के आधार से।

इत्थ मे जो कोई देवसिओ अइचारो अणाचारो तस्स भंते! पडिक्कमामि पडिक्कमंत्तस्स मे सम्मत्तमरणं समाहिमरणं पंडियमरणं वीरियमरणं दुक्खक्खओ कम्मक्खओ बोहिलाहो सुगइगमणं समाहिमरणं जिणगुणसंपत्ति होउ मज्झं।[१]

इति श्रीगौतमगणधरवाण्यां चतुर्थोऽध्यायः।।४।।

इनमें जो कुछ भी दिनभर में अतिचार अनाचार दोष हुये।
(इनमें जो कुछ पन्द्रह दिन में अतिचार अनाचार दोष हुये)
हे भगवन्! उसका प्रतिक्रमण करता हूँ शोधन हेतु लिये।।१।।

प्रतिक्रम करते हुए मेरा प्रभु! सम्यक्त्वमरण व समाधिमरण।
हो पंडितमरण व वीर्यमरण जिससे नहिं होवे पुनर्जनम।।२।।

दुःखों का क्षय कर्मों का क्षय, होवे मम बोधिलाभ होवे।
हो सुगतिगमन व समाधिमरण, मम जिनगुण संपत्ती होवे।।३।।

इति श्रीगौतमगणधरवाण्यां चतुर्थोऽध्यायः।।४।।

उनमें जो कोई दैवसिक-(रात्रिक) अतिचार, अनाचार दोष लगे हैं उन सबका हे भगवन् ! प्रतिक्रमण करता हूँ-उन सब में लगे अतिक्रमणादि दोषों को दूर करता हूँ। इस प्रकार अतिक्रमणादि दोष मैंने दूर किए, उनका शोधन किया। उस मेरे दोष शोधन करने वाले का सम्यक्त्वयुक्तमरण, समाधिमरण, पण्डितमरण, वीर्यमरण होवे। दुःखों का क्षय, कर्मों का क्षय, बोधि-रत्नत्रय का लाभ, सुगति में गमन और जिनेन्द्र के गुणों की सम्पत्ति प्राप्त होवे।

इस प्रकार श्रीगौतम गणधर वाणी में चतुर्थ अध्याय पूर्ण हुआ।

---

१. श्रावक प्रतिक्रमण से उद्धृत।

(५) निषीधिका दण्डक

णमो जिणाणं ३, णमो णिस्सिहीए ३, णमोत्थु दे ३, अरहंत! सिद्ध! बुद्ध! णीरय! णिम्मल! सममण! सुभमण! सुसमत्थ! समजोग! समभाव! सल्लघट्टाणं सल्लघत्ताणं! णिब्भय! णीराय! णिद्दोस! णिम्मोह! णिम्मम! णिस्संग! णिस्सल्ल! माण-माय-मोस-मूरण!

पद्यानुवाद

—प्रतिक्रमणभक्ति—

नमो जिनेभ्यः ३, नमो निषीधिकायै ३, नमोऽस्तु ते ।।

—चौबोल छंद—

हे अर्हंत सिद्ध बुद्धा, नीरज निर्मलसम मन सुमना।
हे सुसमर्थ परम शमयोग, शमभावी हे भवशमना।।
शल्यदुखित के शल्यविनाशन, हे निर्भय निराग निर्दोष।
हे निर्मोह विगत ममता निःसंग तथा निःशल्य विरोष।।१।।
मद माया असत्य के मर्दक, तपःप्रभावी हे परमेश।
गुण-शीलादिरत्नत्रयसागर, हे अनंत अप्रमेय महेश।।

निषीधिका दण्डक का अर्थ

संसार की प्राप्ति के कारण कर्मरूप शत्रुओं को जीत लेने वाले जिनदेवों को नमस्कार हो, नमस्कार हो, नमस्कार हो। निषिद्धिकाओं को नमस्कार हो, नमस्कार हो, नमस्कार हो।

हे घातिकर्म क्षयकारक अर्हन्त ! हे निःशेष कर्मान्मूलक सिद्ध! हे हेयोपादेय विवेक सम्पन्न बुद्ध ! हे ज्ञान–दर्शनावरण रज से रहित नीरज ! हे द्रव्यभाव कलंक रहित निर्मल! हे तृण कांचन और शत्रु मित्र तुल्य मन सम मन ! हे आर्त्त–रौद्र रहित सुमन! हे काय क्लेशानुष्ठान और परिषह सहने में सुसमर्थ ! हे परमोपशम से युक्त शमयोग ! हे संसार के उपशम अथवा रागद्वेष के परिहार

तवप्पहावण! गुणरयणसीलसायर! अणंत! अप्पमेय! महदिमहावीर-वड्ढमाण-बुद्धरिसिणो चेदि णमोत्थु ए णमोत्थु ए णमोत्थु ए।

मम मंगलं अरहंता य सिद्धा य बुद्धा य जिणा य केवलिणो ओहिणाणिणो मणपज्जवणाणिणो चउदसपुव्वंगमिणो सुदसमिदिसमिद्धा य तवो य वारहविहो तवस्सी, गुणा य गुणवंतो य, महरिसी तित्थं तित्थंकरा य, पवयणं पवयणी य, णाणं णाणी य,

---

महति पूज्य महावीर वीर, हे वर्धमान हे बुद्धि ऋषीश।
नमस्कार हो नमस्कार हो, नमस्कार हो तुम्हें हमेश।।२।।
मेरा मंगल करें सर्व, अर्हंत सिद्ध बुद्धा जिनराज।
केवलि जिन अवधिज्ञानी, मनःपर्ययज्ञानी ऋषिराज।।
चौदश पूर्व अंग पारंगत, अंगबाह्य श्रुतसंपन्ना।
बारह तप तपसी गुण और, गुणोंयुत महाऋद्धि शरणा।।३।।
तीर्थ और तीर्थंकर प्रवचन, प्रवचनयुत व ज्ञान ज्ञानी।
सद्दर्शन सम्यग्दृष्टी, संयम व संयमी मुनिध्यानी।।

के लिए द्वादश अनुप्रेक्षा भावनारूप भाव वाले शमभाव ! इस प्रकार के आप जो अर्हन्तादिक हैं आपको सबको नमस्कार हो नमस्कार हो नमस्कार हो। इस प्रकार सामान्यतः अर्हन्त आदिकों की स्तुति कर पुनः विशेषरूप से अन्तिम तीर्थंकर की स्तुति करते हुए कहते हैं—हे माया, मिथ्या और निदानरूप शल्यों से पीड़ित जीवों के उन शल्यों के विनाशक! हे सप्त भयों से रहित निर्भय ! हे राग–द्वेष से निष्क्रान्त नीराग ! हे निष्कलंक अथवा अष्टादश दोषों से रहित निर्दोष! हे अज्ञान अथवा दर्शनमोह और चारित्रमोह से निष्क्रान्त निर्मोह ! हे किसी भी विषय में ममता रहित निर्मम ! हे बाह्य और अभ्यन्तर परिग्रह से रहित निःसंग ! हे माया आदि शल्यों विरहित निःशल्य! हे मान, माया और मृषा के मर्दक मान माया मोष मूरण ! हे तपः प्रभावक ! हे चौरासी लाख गुणरूप रत्नों के भण्डार गुणरत्न ! हे अठारह हजार शीलों के समुद्र शीलसागर! हे अनन्त केवलज्ञान–दर्शन आदि से युक्त अनन्त ! हे इन्द्रिय ज्ञान से अपरिच्छेद्य

दंसणं दंसणी य, संजमो संजदा य, विणीओ विणदा य, बंभचेरवासो बंभचारी य, गुत्तीओ चेव गुत्तिमंतो य, मुत्तीओ चेव मुत्तिमंतो य, समिदीओ चेव समिदिमंतो य, ससमयपर-समयविदू, खंतिक्खवगा य खंतिवंतो य, खीणमोहा य खीणवंतो य, बोहियबुद्धा य बुद्धिमंतो य, चेइयरुक्खा य चेइयाणि।

विनय तथा सुविनययुत साधू, ब्रह्मचर्य व्रत ब्रह्मचारी।
गुप्ति गुप्तिधर मुक्ति मुक्तियुत, समिति और समितिधारी।।४।।

स्वमत और परमत के ज्ञाता, क्षमाशील अरु क्षपक मुनी।
क्षीणमोह यति बोधितबुद्ध, बुद्धिऋद्धीयुत परममुनी।।
चैत्यवृक्ष जिनबिम्ब अकृत्रिम-कृत्रिम जितने त्रिभुवन में।
मेरा मंगल करें सभी ये, ये मंगलप्रद तिहुँजग में।।५।।

ऊर्ध्व अधो अरु मध्यलोक में, सिद्धायतन नमूँ उनको।
सिद्धक्षेत्र अष्टापद सम्मेदाचल ऊर्जयन्त गिरि को।।

अप्रमेय ! हे महति महावीर, वर्धमान ! हे यथावत् परिज्ञान अशेषार्थ स्वरूप केवलज्ञानादि नवलब्धि संपन्न ! बुद्धर्षिन्! आपको त्रिवार नमस्कार हो।

अर्हन्त, सिद्ध, जिन, केवली, अवधिज्ञानी, मनःपर्ययज्ञानी, चौदह पूर्व और द्वादशांग के ज्ञाता, कालिक, उत्कालिक आदि भेदों से विभक्त, अंगबाह्य श्रुतसमूह से समृद्ध, बारह तप और तप के धारक तपस्वी, चौरासी लाख गुण और उन गुणों से युक्त मुनि, कोष्ठबुद्धि, बीजबुद्धि आदि उत्कृष्ट ऋद्धियों से संपन्न महर्षि, तीर्थ, आगम और तदाधारसंघ और तीर्थंकरदेव तथा गणधरदेव, पूर्वापर दोषों से रहित प्रवचन और प्रकृष्ट वचनों से युक्त मुनि, मत्यादि पांच प्रकार के ज्ञान और उस ज्ञान से युक्त ज्ञानी, औपशमिकादि तीनों दर्शन और उन दर्शनों से युक्त दर्शनी, द्वादश संयम और संयम से युक्त संयत, ज्ञान-दर्शन-चारित्र और उपचार लक्षण चतुर्विध विनय और विनय से युक्त विनीत ब्रह्मचर्याश्रम और ब्रह्मचारी, गुप्तियाँ और गुप्तिमान बाह्य और अभ्यन्तर परिग्रह से मुक्त, मुक्तियाँ और तद्वान आत्मा, समितियाँ और समितियों के धारक स्वसमय और

उड्ढमहतिरियलोए सिद्धायदणाणि णमंसामि, सिद्धणि-सीहियाओ अट्ठावयपव्वए सम्मेदे उज्जंते चंपाए पावाए मज्झिमाए हत्थिवालियसहाए जाओ अण्णाओ काओवि णिसीहियाओ जीवलोयम्मि, इसिपब्भारतलग्गयाणं सिद्धाणं बुद्धाणं कम्मचक्कमुक्काणं णीरयाणं णिम्मलाणं, गुरु-आइरिय-उवज्झायाणं पव्वत्तित्थेर-कुल-यराणं,

---

चंपा पावा नगरि मध्यमा, हस्तिबालिका मंडप में।
और अन्य भी मनुज लोक में, तीर्थ क्षेत्र सबको प्रणमें।।६।।

मोक्षशिला को प्राप्त सिद्ध, जिनबुद्ध कर्म से मुक्त महान।
विगत कर्मरज नीरज विरहित, भावकर्ममल से अमलान।।
पांच भरत पांच ऐरावत, पांचों महाविदेहों में।
सूरि उपाध्याय गुरू प्रवर्तक, स्थविर और कुलकर जितने।।७।।

चतुर्वर्णयुत श्रमण संघ के, साधू जितने इस जग में।
संयम तपसी ये सब मेरे, पावन मंगल हेतु बनें।।

परसमयवेत्ता, शान्तिक्षपक (श्रेण्यारूढ़ मुनि) क्षीणमोह (क्षीणकषाय गुणस्थानवर्ती मुनि) बोधित बुद्ध (जो पर के उपदेश से संसार, शरीर, विषयों आदि से विरक्त हुए हैं) और बुद्धिप्रभृति ऋद्धियों के धारक तथा चैत्यवृक्ष और चैत्य ये सब मेरे पापमलों को गालने और सुख के देने वाले होवें।

मैं ऊर्ध्वलोक, अधोलोक और तिर्यक्लोकवर्ती सब सिद्धायतनों को नमस्कार करता हूँ। कैलाशपर्वत, सम्मेदशिखर, ऊर्जयन्तपर्वत, चंपापुर, पावापुर, मध्यमपावा, हस्तिबालिका मंडप, इन पर जो सिद्ध निषीधिकाएं (निर्वाण क्षेत्र) हैं उन सबको नमस्कार करता हूँ।

इनके अलावा अन्य ढाईद्वीप और दो समुद्रों में मोक्षशिला के उपरिभाग में अवस्थित सब सिद्ध, बुद्ध, कर्मचक्रमुक्त, नीरज, निर्मल, गुरु, आचार्य, उपाध्याय, प्रवर्त्तक, स्थविर और गणधर इनकी जो कोई भी अन्य निषिद्धिकाएं हैं उन सबको नमस्कार करता हूँ तथा पाँच भरत, पांच ऐरावत और पांच विदेह में ऋषि, यति, मुनि और अनगार यह जो चातुर्वर्ण्य श्रमण संघ है और लोक में

चाउवण्णो य समणसंघो य भरहेरावएसु दससु पंचसु महाविदेहेसु। जे लोए संति साहवो संजदा तवसी एदे मम मंगलं पवित्तं! एदेहं मंगलं करेमि भावदो विसुद्धो सिरसा अहिवंदिऊण सिद्धे काऊण अंजलिं मत्थयम्मि, तिविहं तियरणसुद्धो[1]।

इति श्रीगौतमगणधरवाण्यां पंचमोऽध्यायः।।५।।

भावसहित मैं त्रिविधशुद्धियुत, अंजलि मस्तक पर धरके।
त्रिविधक्रिया में शीश झुकाकर, सबको वंदूँ रुचि करके।।८।।

इति श्रीगौतमगणधरवाण्यां पंचमोऽध्यायः।।५।।

मानुषोत्तर पर्वत पर्यन्त क्षेत्र में जो साधु संयत तपस्वी हैं ये मेरे लिए पवित्र मंगल स्वरूप होवें। जिसके कि देववन्दना, प्रतिक्रमण और स्वाध्याय इन तीनों क्रियाओं के अनुष्ठान से मन, वचन, काय ये तीनों करण शुद्ध हुए हैं। भाव से विशुद्ध हुआ अंजलि मस्तक पर रख करके सिर से सिद्धों की वन्दना कर मैं इन सबकी स्तुति करता हूँ।

इस प्रकार श्रीगौतम गणधर वाणी में पंचम अध्याय पूर्ण हुआ।

नौमि गौतमस्वामिन् ! त्वां, वीरप्रभोर्गणीश्वरम्।
सवर्द्धिधारिणं देवं, चतुर्ज्ञानसमन्वितम्।।1।।
वीर दिव्यध्वनेर्हेतुं, गणाधीशं गणेशिनम्।
द्वादशांगस्य कर्तारं, सज्ज्ञानद्धर्यै नमाम्यहम्।।2।।

---

१. दैवसिक प्रतिक्रमण से उद्धृत।

(६) गणधरवलय मंत्र

णमो जिणाणं, णमो ओहिजिणाणं, णमो परमोहिजिणाणं, णमो सव्वोहिजिणाणं, णमो अणंतोहिजिणाणं, णमो कोट्ठ-बुद्धीणं, णमो बीजबुद्धीणं, णमो पादाणुसारीणं, णमो संभिण्णसोदाराणं, णमो सयंबुद्धाणं, णमो पत्तेयबुद्धाणं, णमो बोहियबुद्धाणं, णमो उजुमदीणं,

---

पद्यानुवाद *—शंभु छंद—*

मैं नमूं जिनों[1] को जो अर्हन् अवधीजिन[2] मुनि को नमूं नमूं।
परमावधिजिन को नमूँ तथा, सर्वावधि जिन को नमूं नमूं।।
मैं नमूं अनंतावधिजिन[3] को, अरु कोष्ठबुद्धियुत साधु नमूं।
मैं नमूं बीजबुद्धीयुतमुनि, पादानुसारियुत साधु नमूं।।१।।

गणधरवलय मंत्र का अर्थ

जिनों को नमस्कार हो।।१।। देशावधि जिनों को नमस्कार हो।।२।। परमावधि जिनों को नमस्कार हो।।३।। सर्वावधि जिनों को नमस्कार हो।।४।। अनन्तावधि (केवलज्ञानी) जिनों को नमस्कार हो।।५।। जैसे कोठे में कोठे के स्वामी द्वारा सुरक्षित और जुदे–जुदे रखे हुए धान्यों का अवस्थान रहता है उसी तरह जिनकी बुद्धि में अवधारित ग्रंथ और अर्थों का तप के माहात्म्य से जुदा–जुदा अविनष्ट अवस्थान रहता है, वे कोष्ठ के समान बुद्धि वाले जिन होते हैं उन कोष्ठ–बुद्धि के धारक जिनों को नमस्कार हो।।६।।

जैसे उपजाऊ क्षेत्र में बोया गया एक भी बीज कालादिक की सहायता पाकर अनेक बीज–प्रद होता है उसी तरह एक पद के ग्रहण से अनेक पदार्थों की प्रतिपत्ति जिस बुद्धि में हो वह बीजबुद्धि है। वह बीज–बुद्धि तप के माहात्म्य से जिनके हो वे बीजबुद्धि जिन होते हैं। उन बीजबुद्धि जिनों को नमस्कार हो।।७।। आदि–अन्त जहाँ–तहाँ के एक पद के ग्रहण से समस्त ग्रन्थार्थ का

---

१. जिन-अर्हंत् भगवान अथवा अरहंत, सिद्ध सकलजिन हैं और आचार्य, उपाध्याय, साधु देशजिन हैं (धवला पुस्तक ९, पृ. १०)। २. रत्नत्रयसहित अवधिज्ञानी मुनि अवधिजिन हैं (धवला पु. ९, पृ. ४०)। ३. अंत और अवधि से रहित केवली भगवान अनंतावधि जिन हैं (धवला पु. ९, पृ. ५२)।

णमो विउलमदीणं, णमो दसपुव्वीणं, णमो चउदस-पुव्वीणं, णमो अट्ठंग-महा-णिमित्त-कुसलाणं, णमो विउव्व[१]-इड्ढि-पत्ताणं, णमो विज्जाहराणं, णमो चारणाणं, णमो पण्णसमणाणं[२], णमो आगास-गामीणं, णमो आसीविसाणं, णमो दिट्ठिविसाणं, णमो उग्गतवाणं, णमो

संभिन्नश्रोतृयुत साधु नमूं, मैं स्वयंबुद्ध मुनिराज नमूं।
प्रत्येक बुद्ध ऋषिराज नमूं, पुनि बोधित बुद्ध मुनीश नमूं।।
ऋजुमतिमनपर्यय साधु नमूं, मैं विपुलमतीयुत साधु नमूं।
मैं नमूं अभिन्न[१] सुदशपूर्वी, चौदशपूर्वी मुनिराज नमूं।।२।।

अवधारण जिस बुद्धि में हो जाय वह पदानुसारि बुद्धि है, वह पदानुसारि बुद्धि तप के माहात्म्य से जिनके होती है उन पदानुसारि जिनों को नमस्कार हो।।८।।

बारह योजन लंबे और नव योजन चौड़े चक्रवर्ती के स्कन्धावार के मनुष्य, घोड़े, ऊंट, हाथी आदि से उत्पन्न अक्षरात्मक और अनक्षरात्मक परस्पर विभिन्न भी शब्द समूह का एक साथ प्रतिभास जिस ऋद्धि के होने पर होता है। वह संभिन्न–श्रोत्री ऋद्धि होती है, वह ऋद्धि तप के प्रभाव से जिनके होती है वे संभिन्न–श्रोता ऋद्धि वाले होते हैं उन संभिन्न–श्रोता ऋद्धि के धारक जिनों को नमस्कार हो।९।।

वैराग्य का किंचित् कारण देखकर और परोपदेश की कोई अपेक्षा न रखकर स्वयं ही जो वैराग्य को प्राप्त होते हैं, वे स्वयं–बुद्ध कहलाते हैं। उन स्वयंबुद्ध जिनों को नमस्कार हो।।१०।। जो परोपदेश के बिना किसी एक निमित्त से वैराग्य को प्राप्त होते हैं, जैसे नीलांजना के विलय से वृषभादिक, उन प्रत्येकबुद्ध जिनों को नमस्कार हो।।११।।

जो भोगों में आसक्त महानुभाव अपने शरीर आदि में अशाश्वत रूप देखकर वैराग्य को प्राप्त होते हैं वे बोधित–बुद्ध कहलाते हैं। परोपदेश से भी जो वैराग्य को प्राप्त होते हैं वे भी बोधित–बुद्ध कहलाते हैं, उन्हें नमस्कार हो।।१२।। ऋजुमति मनःपर्ययज्ञानी जिनों को नमस्कार हो।।१३।। विपुलमति मनःपर्ययज्ञानी जिनों को नमस्कार हो।।१४।। अभिन्नदशपूर्वधारक जिनों को नमस्कार हो।।१५।। उत्पादादि चतुर्दश पूर्वधर जिनों को नमस्कार हो।।१६।।

१. टीका के आधार से अभिन्न पद है।

दित्ततवाणं, णमो तत्ततवाणं, णमो महातवाणं, णमो घोरतवाणं, णमो घोरगुणाणं, णमो घोर-परक्कमाणं, णमो घोरगुण-बंभयारीणं[१], णमो आमोसहि-पत्ताणं, णमो खेल्लोसहिपत्ताणं, णमो जल्लोसहिपत्ताणं,

अष्टांगमहानिमित्तकुशली, नमूं नमूं विक्रियाऋद्धि प्राप्त।
विद्याधरऋषि को नमूं नमूं मैं, संयत चारणऋद्धि[३] प्राप्त।।
मैं प्रज्ञाश्रमणमुनीश नमूं, आकाशगामि मुनिराज नमूं।
आशीविषयुत ऋषिराज नमूं दृष्टीविषयुतमुनिराज नमूं।।३।।

अंग, स्वर, व्यंजन, लक्षण, छिन्न, भौम, स्वप्न, अन्तरिक्ष इन आठ निमित्तों को हृदय में रखकर जो जीवों के शुभ–अशुभ को जानते हैं वे अष्टांगनिमित्तों में कुशल होते हैं। अष्टांगनिमित्त कुशल जिनों को नमस्कार हो।।१७।। विकुर्वन ऋद्धि–प्राप्त जिनों को नमस्कार हो।।१८।। अंग, पूर्व, वस्तु, प्राभृत आदि सब विद्याओं के आधारभूत विद्याधर जिनों को नमस्कार हो।।१९।। जल, जंघा, तंतु, फल, फूल, बीज, आकाश और श्रेणी पर अप्रतिहत चलने में कुशल आठ प्रकार के चारणर्द्धिधारी जिनों को नमस्कार हो।।२०।।

जो औत्पत्तिकी, वैनयिकी, कर्मजा और पारिणामिकी इस प्रकार चार प्रकार की प्रज्ञाओं के धारक हैं उन प्रज्ञाश्रमण जिनों को नमस्कार हो।।२१।। अविद्यमान अर्थ का चाहना आशिष है। आशिष जिनका विष है वे आशीविष श्रमण होते हैं अथवा जिनका आशिष अमृत है वे भी आशीर्विष श्रमण होते हैं। उन्हें नमस्कार हो, वे किसी को कह दें कि मर जाओं तो वह मर जावे। यदि वे किसी को कह दें कि विष–रहित हो जाओ तो वह जीव विषरहित हो जावे। यद्यपि वे मुनि ऐसा करते नहीं हैं परन्तु तप के प्रभाव से प्राप्त शक्ति का प्रदर्शन है।।२२।। जिन मुनियों की दृष्टि ही विषरूप होती है या जिनकी दृष्टि ही अमृत है वे दृष्टि–विष होते हैं। उन दृष्टि–विष जिनों को नमस्कार हो।।२३।। जो

१. विउव्वगइड्ढिपत्ताणं इति पाठः। २. पण्णासमणाणं इति पाठः। ३. चारणऋद्धि के ८ भेद हैं–जलचारण, जंघाचारण, तंतु चारण, फलचारण, पुष्पचारण, बीजचारण, आकाशचारण और श्रेणीचारण (टीका से)

णमो विप्पोसहि-पत्ताणं, णमो सव्वोसहिपत्ताणं, णमो मणबलीणं, णमो वचिबलीणं, णमो कायबलीणं, णमो खीरसवीणं, णमो सप्पिसवीणं, णमो महुरसवीणं, णमो अमियसवीणं[१], णमो अक्खीण-

मैं उग्रतपस्वी नमूं दीप्ततपि नमूं तप्ततपसाधु नमूं।
मैं नमूं महातपधारी को, अरु घोरतपोयुत साधु नमूं।।
मैं नमूं घोरगुणयुत साधु, मैं घोरपराक्रम साधु नमूं।
मैं नमूं घोरगुणब्रह्मचारि, आमौषधिप्राप्त मुनीश नमूं।।४।।

पंचमी, अष्टमी और चतुर्दशी में से किसी भी दिन के उपवास की प्रतिज्ञा कर लेते हैं पश्चात् दो या तीन दिन तक आहार न मिलने पर भी उन दिनों का उसी प्रकार निर्वाह करते हैं। ऐसे साधु उग्र–तपवाले होते हैं, उन उग्रतप जिनों को नमस्कार हो।।२४।। चतुर्थ, षष्ठ आदि उपवासों के करने पर भी जिनके शरीर का तेज बल तप–जनित लब्धि के माहात्म्य से प्रतिदिन शुक्लपक्ष के चन्द्रमा की तरह बढ़ता जाता है, वे दीप्त–तप जिन होते हैं उनको नमस्कार हो।।२५।। जिनके अग्नि से सन्तप्त लोहे पर पतित जलकणिका समान ग्रहण किये हुए चतुर्विध आहार का शोषण हो जाने के कारण नीहार नहीं होता है, वे तप्ततप होते हैं, उन तप्त–तप जिनों को नमस्कार हो।।२६।। जो पक्ष, मास उपवासादिक के अनुष्ठान में तत्पर हैं, महातप ऋद्धि के धारक होते हैं अथवा जो अणिमादि आठगुणों से उपेत–सहित हैं, जलचारणादि आठ प्रकार के चारण गुणों से अलंकृत हैं, स्फुरायमान शरीर प्रभा वाले हैं, द्विविध अक्षीण ऋद्धि से युक्त हैं, सर्वौषधि स्वरूप हैं, पाणिपात्र में पतित सब आहारों को अटल स्वरूप से पलटाने में समर्थ हैं, इन्द्रों से भी अनन्तगुणें बल वाले हैं, आशीर्विष और दृष्टिविष लब्धियों से समन्वित हैं, तप्ततप ऋद्धि के धारक हैं, सब विद्याओं के धारक हैं तथा मति, श्रुत, अवधि और मनःपर्यय ज्ञानों से तीन लोक के व्यापार को जानने वाले हैं, वे मुनि महातप ऋद्धि के धारक होते हैं उनको नमस्कार हो।।२७।। जो हिंसक सिंह, शार्दूल आदि से आकुल पर्वतों के गुफा

१. घोरगुणबंभचारीणं इति पाठः।

महाणसाणं, णमो वड्ढमाणाणं, णमो सिद्धायदणाणं, णमो भयवदो महदि महावीर-वड्ढमाण-बुद्धरिसीणो[१] चेदि।

क्ष्वेलौषधिप्राप्त मुनीश नमूं, जल्लौषधि प्राप्त मुनीश नमूं।
विप्रुष औषधियुत साधु नमूं, सर्वौषधिप्राप्त मुनीश नमूं।
मैं नमूं मनोबलि मुनिवर को, मैं वचनबली ऋद्धीश नमूं।
मैं कायबली मुनिनाथ नमूं, मैं क्षीरस्रावी साधु नमूं।।५।।

आदि में, प्रचुरतर शीत, वात, आतप, दंशमशक आदि से युक्त भयानक श्मशानों में जाकर ध्यान धरते हैं और दुर्धर उपसर्गों को सहन करने में तत्पर हैं, वे घोर–तप के धारक होते हैं। उन घोर तप के धारक जिनों को नमस्कार हो।।२८।।

अत्यन्त भयंकर रोग से पीड़ित और महाभयंकर एकान्त स्थान में रहते भी जो मुनिगण स्वीकृत तपोयोगों की वृद्धि में ही सदा तत्पर रहते हैं, वे घोरपराक्रम नामक ऋद्धि के धारक हैं। उनको नमस्कार हो।।२९।। बहुत काल से जो अस्खलित ब्रह्मचर्य के धारक हैं और प्रकृष्ट चारित्र–मोहनीय कर्म के क्षयोपशम से जिनके समस्त दुःस्वप्न नष्ट हो गये हैं, वे घोर ब्रह्मचर्य ऋद्धि के धारक हैं उनको नमस्कार हो।।३०।।

किन्हीं–किन्हीं ग्रंथों में 'अघोरगुण ब्रह्मचारी' ऐसा भी पाठ देखा जाता है उस अपेक्षा वहाँ यह अर्थ किया गया है कि ब्रह्म का अर्थ पांच व्रत, पांच समिति और तीन गुप्ति स्वरूप चारित्र है, क्योंकि वह शान्ति की पुष्टि का कारण है। अघोर अर्थात् शान्त हैं गुण जिनमें वह अघोरगुण हैं, अघोर गुण ब्रह्म का आचरण करने वाले अघोरगुण–ब्रह्मचारी कहलाते हैं। जिनके तप के प्रभाव से डमरादि-मारि (रोग), दुर्भिक्ष, वैर, कलह, वध, बन्धन, रोध आदि के प्रशमन की शक्ति उत्पन्न हुई है वे अघोरगुण ब्रह्मचारी हैं। उन अघोरगुण ब्रह्मचारी जिनों को नमस्कार हो।।३१।। आम अर्थात् अपक्व आहार, वह ही जिनके औषधपने को प्राप्त है उन आमौषधि प्राप्त जिनों को नमस्कार हो।।३२।। क्ष्वेल नाम निष्ठीवन आदि का है वह क्ष्वेल ही जिनका औषधिपने को प्राप्त है

१. अभयसवीणं इति पाठः।

जस्संतियं धम्मपहं णियच्छे[2] तस्संतियं वेणइयं पउंजे।
काएण वाचा मणसावि णिच्चं, सक्कारए तं सिर-पंचमेण[3]।।१।।

इति श्रीगौतमगणधरवाण्यां षष्ठोऽध्यायः।।६।।

मैं घृतस्रावी मुनिराज नमूं, मैं मधुरस्रावी साधु नमूं।
मैं अमृतस्रावी साधु नमूं, अक्षीणमहानस साधु नमूं।।
मैं वर्धमान ऋद्धीश नमूँ, मैं सिद्धायतन समस्त नमूं।
मैं भगवत् महति महावीर, श्री वर्धमान बुद्धर्षि नमूं।।६।।

-शेर छंद-

जिनके निकट मैं धर्म पथ को प्राप्त किया हूँ।
उनके निकट ही विनयवृत्ति धार रहा हूँ।।
नित काय से वचन से और मन से उन्हीं को।
पंचांग नमस्कार करूं भक्तिभाव सो।।१।।

इति श्रीगौतमगणधरवाण्यां षष्ठोऽध्यायः।।६।।

वे क्ष्वेलौषधि प्राप्त होते हैं उन क्ष्वेलौषधिप्राप्त जिनों को नमस्कार हो।।३३।। सारे शरीर के मल को जल्ल (प्रस्वेद–पसीना) कहते हैं, वही जिनका औषधिपने को प्राप्त हो जाता है, उन जल्लौषधिप्राप्त जिनों को नमस्कार हो।।३४।।

विप्रुष नाम ब्रह्मबिन्दु अर्थात् वीर्य का है वह वीर्य ही जिनका औषधिपने को तप के प्रभाव से प्राप्त हो जाता है उन विप्रुषौषधिप्राप्त जिनों को नमस्कार हो।।३५।। सर्व अर्थात् रस, रुधिर, मांस, मेद, अस्थि, मज्जा, शुक्र, फुफ्फुस, खरीष, कालेप, मूत्र, पित्त, आन्त, उच्चार (पुरीष) नख, केश ये सब जिनके औषधिरूप को प्राप्त हो गये हैं उन सर्वौषधि–प्राप्त जिनों को नमस्कार हो।।३६।। बारह अंगों में निर्दिष्ट त्रिकालगोचर अनन्त अर्थपर्यायों व व्यंजन पर्यायों से युक्त छह द्रव्यों का निरन्तर चिन्तन करने पर भी खेद को प्राप्त न होना मनबल है, यह मनबल जिनके है उनको मनबली कहते हैं, उन मनबली जिनों को नमस्कार हो।।३७।। बारह अंगों का कई बार परिवर्तन (पाठ) करके भी जो

---

१. रिसिणो इति पाठः। २. णिगच्छे इति पाठः। ३. पाक्षिक प्रतिक्रमण से उद्धृत।

खेद को प्राप्त नहीं होता है, वह वचन वचन–बल है। तप के माहात्म्य से उत्पादित वचन–बल वाले वचन–बली कहलाते हैं उन वचनबली जिनों को नमस्कार हो।।३८।।

जो तीनों भुवनों को हाथ की अंगुली से उठाकर अन्य स्थान में रखने में समर्थ हैं उनकी कायबली संज्ञा है, उन कायबली जिनों को नमस्कार हो।।३९।। क्षीर अर्थात् दुग्ध स्राव अथवा स्वाद जिनके है, वे क्षीरस्रावी या क्षीरस्वादी होते हैं। उनके पाणि में पतित विषादि कुत्सित अशन भी तप के माहात्म्य से क्षीररूप परिणत हो जाता है या उसमें क्षीर जैसा स्वाद आने लगता है वे क्षीरस्रावी होते हैं उन क्षीरस्रावी जिनों को नमस्कार हो।।४०।। सर्पि का अर्थ घृत है। घृतस्रावी या घृतस्वादी जिनों को नमस्कार हो।।४१।।

मधुर शब्द से मधुर रस का ग्रहण होता है अथवा मधुस्रावी ऐसा भी पाठ है, तदनुसार मधु शब्द से गुड़, खांड, शर्करा आदि का ग्रहण होता है, क्योंकि मधुर स्वाद के प्रति इनके समानता पाई जाती है। जो हाथ में रखे हुए सब आहारों को गुड़, खांड, शर्करा के स्वाद स्वरूप से परिणमन करने में समर्थ हैं वे मधुरस्रावी–मधुरस्वादी अथवा मधुस्वादी जिन होते हैं उनको नमस्कार हो।।४२।। जिनके हाथों को प्राप्त हुआ आहार अमृत के स्वाद स्वरूप से परिणत होता है वे अमृत–स्रावी या अमृत–स्वादी जिन होते हैं जो कि यहाँ उपस्थित होते हुए देवाहार–भोजी होते हैं उन अमृतस्रावी या अमृत–स्वादी जिनों को नमस्कार हो।।४३।। जिनका महानस अक्षीण है वे अक्षीणमहानस होते हैं। जिस भोजन से आहार निकाल कर उन्हें दिया जाता है, वह भोजन चक्रवर्ती के स्कन्धावार को जिमा देने पर भी वृद्धि विशेष के कारण उस दिन सूर्यास्त तक क्षीण नहीं होता है, वे अक्षीण महानस होते हैं उन्हें नमस्कार हो। अथवा अक्षीण महानस शब्द देशामर्शक है इसलिए उससे वसति–अक्षीण का भी ग्रहण होता है। दोनों ही का अर्थ कहा है कि जिसके भात, घृत या भिगोया हुआ अन्न परोस लेने के पश्चात् चक्रवर्ति के स्कन्धावार को देने पर भी समाप्त नहीं होता है, वह अक्षीणमहानस ऋद्धि धारक कहलाता है। जिसके चार हाथ प्रमाण भी गुफा में रहने पर चक्रवर्ती का सैन्य भी उस गुफा में रह सकता है वह अक्षीणावास ऋद्धि धारक होता है। उन अक्षीणमहानस व

अक्षीणावास जिनों को नमस्कार हो।।४४।। सिद्धों के निर्वाण–स्थानों को नमस्कार हो।

अथवा सर्व–सिद्ध इस वचन से पूर्व में कहे हुए समस्त जिनों का ग्रहण करना चाहिए, क्योंकि जिनों से पृथक्भूत देश–सिद्ध और सर्व–सिद्ध पाये नहीं जाते। सब सिद्धों के जो आयतन हैं वे सर्व सिद्धायतन हैं। इससे कृत्रिम व अकृत्रिम जिनगृहों का तथा जिनप्रतिमाओं के निलयों का तथा ईषत्प्राग्भार, ऊर्जयन्त, चंपा, पावानगरादि सब निषीधिकाओं का ग्रहण होता है। उन सब जिनायतनों को नमस्कार हो।।४५।। सहजात विशिष्ट मत्यादि ज्ञानत्रय के धारक अथवा पूजा के अतिशय को प्राप्त भगवान् महावीर, वर्धमान्, बुद्ध और ऋषि को नमस्कार हो। ये सब अन्तिम तीर्थंकर भगवान् के नाम हैं, क्योंकि ऋषि प्रत्यक्षवेदी या ऋद्धि धारक का नाम है, भगवान महावीर प्रत्यक्षवेदी भी थे और ऋद्धि–धारक भी थे, इसलिए वे ऋषि थे। हेय और उपादेय के विवेक से सम्पन्न को बुद्ध कहते हैं। भगवान हेयोपादेय के विवेक से सम्पन्न होने से बुद्ध थे। भगवान के गर्भावतारादि के समय इन्होंने उनके माता–पिता की बड़ी भारी पूजा की, रत्नों की वृष्टि की और अपनी भी ऋद्धि–वृद्धि आदि देखकर बन्धुजनों ने भगवान का वर्धमान यह नाम रख दिया। भगवान के जन्माभिषेक के समय भगवान का शरीर छोटा था उसे देखकर इन्द्र को आशंका उत्पन्न हो गई कि इतने बड़े–बड़े कलशों का जल यह शरीर कैसे सहन कर सकेगा। उस समय भगवान ने इन्द्र की आशंका दूर करने के लिए अपनी सामर्थ्य (अनन्त बलीय) ख्यापन करने के लिए अपने पैर के अंगूठे से सुमेरु को हिला दिया। इस कारण इन्द्र ने भगवान का 'वीर' यह नामकरण दिया। कुमारकाल में आमली क्रीड़ा के समय खेलते हुए संगम देव ने अपने विमान की गति के स्खलन हो जाने से, भय उत्पन्न करने के लिए महान फटाटोप से युक्त, भयानक सर्प का रूप धरकर विक्रिया से सारे वृक्ष को वेष्टित कर लिया। भगवान उससे डरे नहीं, वे उस सर्प के मस्तक पर पैर रखकर वृक्ष पर से उतर गये। इस कारण संगम देव ने भगवान का 'महावीर' यह नाम रख दिया। भगवान जब तप धारण कर वाराणसी[१] में कायोत्सर्ग में स्थित थे, तब रुद्र ने उन्हें ध्यान से

विचलित करने के लिए महान उपसर्ग किया। उस उपसर्ग को जीत लेने से रुद्र ने उसका नाम महतिमहावीर रखा।

यहाँ पर 'चेदि' इस च से भगवान में उक्त नामों का समुच्चय किया गया है। इति शब्द यहाँ पर प्रकार अर्थ में आया है। इस प्रकार वाले इष्ट देवता के रूप में शास्त्र के प्रारंभ में स्तवन करने योग्य हैं। यह चेदि का अर्थ है।

सभी चतुर्विंशति तीर्थंकर स्तुत्य हैं फिर भी ग्रंथ–कर्ता गणधरदेव ने भगवान वर्द्धमान जिनेश्वर की ही स्तुति क्यों की, इसका उत्तर ऐसी आंशका होने पर कहते हैं।

जिन भगवान के समीप मैंने धर्म के मार्ग को नियम से प्राप्त किया है उन भगवान के समीप काय, वचन और मन से सर्वकाल विनय प्रयुक्त करता हूँ। विनय ही प्रयुक्त नहीं करता हूँ किन्तु दोनों घुटने, दोनों हाथ जोड़कर सिर झुकाकार पंचांग नमस्कार करता हूँ।।१।।

इस प्रकार श्रीगौतम गणधर वाणी में छठा अध्याय पूर्ण हुआ।

संयम के दो भेद

दुविहं संजमचरणं, सायारं तह हवे णिरायारं।
सायारं सग्गंथे, परिग्गहारहिय खलु णिरायारं।।19।।

(श्री कुंदकुंददेवकृत–चारित्रपाहुड़ गाथा-21)

अर्थ–सागार और अनगार के भेद से संयमचरण चारित्र दो प्रकार का है। उनमें से सागारचारित्र परिग्रह सहित श्रावक के होता है और निरागार चारित्र परिग्रह रहित मुनियों के होता है।

१. उत्तरपुराण में 'उज्जयिनी' माना है।

(७) सुदं मे आउस्संतो !

(मुनिधर्म)

सुदं मे आउस्संतो! इह खलु समणेण भयवदा महदि-महावीरेण महा-कस्सवेण सव्वण्हुणा सव्वलोगदरिसिणा सदेवासुर-माणुसस्स लोयस्स आगदि-गदि-चवणो-ववादं बंधं मोक्खं इड्ढिं ठिदिं जुदिं अणुभागं तक्कं कलं मणो-माणसियं भूतं कयं पडिसेवियं आदिकम्मं अरुह-कम्मं सव्वलोए सव्वजीवे सव्वभावे सव्वं समं जाणंता पस्संता विहरमाणेण समणाणं पंचमहव्वदाणि राइभोयणवेरमण-छट्ठाणि सभावणाणि समाउग-पदाणि सउत्तर-पदाणि सम्मं धम्मं उवदेसिदाणि।

पद्यानुवाद

हे आयुष्मन्तों! वीर प्रभु की ध्वनि से मैंने सुना यहीं।
वे महाश्रमण भगवान महति, महावीर महाकाश्यपगोत्री।।१।।
सर्वज्ञ सर्वलोकदर्शी, युगपत् सबको जानते हुए।
सब देव असुर मानवयुत इस तिहुंजग को भी देखते हुए।।२।।

सुदं मे आउस्संतो ! का अर्थ

(मुनिधर्म)

हे आयुष्मान् भव्यों ! इस भरत क्षेत्र में देव, असुर और मनुष्यों सहित प्राणिगण की आगति, गति, च्यवनोपपाद, बन्ध, मोक्ष, ऋद्धि, स्थिति, द्युति, अनुभाग, तर्क, कला, मन, मानसिक, भूत, कृत, प्रतिसेवित, आदिकर्म, अरुहकर्म इनको तीन सौ तेतालीस रज्जुप्रमाण और लोक में सब जीवों, सब भावों और सब पर्यायों को एक साथ जानते हुए, देखते हुए तथा विहार करते हुए, काश्यप–गोत्रीय श्रमण, भगवान, सर्वज्ञ, सर्वदर्शी महतिमहावीर अन्तिम तीर्थंकर देव ने पच्चीस भावनाओं सहित, मातृका पदों सहित और उत्तर–पदों सहित रात्रि भोजन विरमण है छठा अणुव्रत जिनमें ऐसे पांच महाव्रतरूप समीचीन धर्मों का उपदेश दिया है, वह मैंने उनकी दिव्यध्वनि से सुना है।

(२८ मूलगुण)

वद-समिदिंदिय-रोधो लोचो आवासय-मचेल-मण्हाणं।
खिदिसयण-मदंतवणं ठिदिभोयण-मेयभत्तं च।।१।।
एदे खलु मूलगुणा समणाणं जिणवरेहिं पण्णत्ता।
एत्थ पमादकदादो अइचारादो णियत्तो हं।।२।।
छेदोवट्ठावणं होदु मज्झं।

सबकी आगति[१] गति[२] च्यवन[३] जन्म[४], अरु बंध[५] मोक्ष[६] ऋद्धी[७] स्थिति[८]।
द्युति[९] अनुभाग[१०] अरु तर्कशास्त्र[११], सब कला[१२] मनो[१३] अरु मानसीक[१४]।।३।।
अनुभूत[१५] भूत कृत[१६] प्रतिसेवित[१७], कृषि आदिकर्म[१८] अकृतिमकर्म[१९]।
सम्पूर्ण लोक सब जीव सर्व भावों को भी युगपत् जानन्।।४।।
वे श्री विहार करते भगवन् जब समवसरण में राजे हैं।
मुनियों के लिए धर्म सम्यक् उसको उनने उपदेशा है।।५।।

(२८ मूलगुण)

व्रत समिती इंद्रियनिरोध छह, आवश्यक आचेलक लोच।
भूमिशयन अस्नान अदंत-धावन स्थितिभुक्ती भक्तैक।।१।।
जिनवर कथित मूलगुण मुनि के, प्रमाद से इनमें अतिचार।
इनसे दूर हुआ हूँ मेरा, छेदोपस्थापन हो नाथ।।२।।

(२८ मूलगुण)

पांच महाव्रत, पांच समिति, पांच इन्द्रियरोध, लोच, छह आवश्यक, अचेलकत्व (नग्नता), स्नान त्याग, क्षितिशयन, अदन्त धावन, खड़े होकर आहार लेना, दिन में ही एक बार ही आहार लेना। ये अट्ठाईस मूलगुण श्रमणों के जिनेन्द्र भगवान ने कहे हैं, इनमें प्रमाद से लगे हुए दोष मिथ्या हो। छेदोपस्थापना मेरे हो।

१–अन्यस्थान से यहाँ आना, २. यहाँ से अन्यत्र जाना, ३. च्युत होना, ४. जन्म लेना, ५. कर्मों का बन्ध, ६. कर्मों का मोक्ष, ७. चक्रवर्ती तथा सौधर्मादि देवों की ऋद्धि, ८. आयुस्थिति, ९, द्युति, १०, कर्मों का फल देने की सामर्थ्य, ११. तर्क शास्त्र, १२. बहत्तरकला या गणितविद्या, १३. परकीय चित्त, १४. मन की चेष्टा, १५. पूर्व अनुभूत, १६. पूर्वकृत, १७. पुनः सेवित, १८. कर्मभूमि के अनुप्रवेश में प्रथमतः प्रवृत्त असि, मसि, कृष्यादिक कर्म, १९. अकृत्रिम द्वीप, समुद्रादि का प्रकट कर्म।

(पच्चीस भावना)

चूलियं तु पवक्खामि भावणा पंचविंसदी।
पंच पंच अणुण्णादा एक्केक्कम्हि महव्वदे।।१।।
मणगुत्तो वचिगुत्तो इरिया - कायसंयदो।
एसणा - समिदि - संजुत्तो पढमं वदमस्सिदो।।२।।
अकोहणो अलोहो य, भय - हस्स - विवज्जिदो।
अणुवीचि-भास-कुसलो, विदियं वदमस्सिदो।।३।।

(पच्चीस भावना)

पच्चीस भावना है जिसमें ऐसी चूलिका कहूँगा मैं।
मानी हैं पाँच पाँच ये भी जो हैं एक एक महाव्रत में।।१।।
मनगुप्ति वचनगुप्ति ईर्यासमिती व कायसंयत रखना।
एषणसमिती ये पाँच भावना प्रथम महाव्रत की धरना।।२।।
क्रुध लोभ और भय हास्य त्याग अनुवीचीभाषा कुशल कही।
आगम अनुकूलवचन दूजे व्रत की ये पाँच भावना ही।।३।।

पच्चीस भावना का अर्थ

उक्त और अनुक्त अर्थ का चिन्तन करना चूलिका है। उसका अर्थ कहता हूँ। उसमें पच्चीस भावनाएँ हैं, जो कि एक एक महाव्रत में पाँच-पाँच स्वीकार की गई हैं।।१।।

मन से गुप्त, वचन से गुप्त, गमन करते समय काय से प्राणियों की पीड़ा के परिहार में तत्पर तथा एषणा समिति से संयुक्त होता हूँ। अन्यत्र भावना कही गई हैं, यहाँ उन भावनाओं से सहित व्यक्ति कहा गया है, जो कि अभिन्न होने से भावना ही है, क्योंकि भावनाओं से युक्त व्यक्ति के ही अहिंसा व्रत निर्मल होता है।।२।।

क्रोध से रहित, लोभ से रहित, भय से वर्जित, हास्य से वर्जित और आगमानुकूल बोलने में कुशल होऊँ। ये पांच सत्य महाव्रत की भावनाएँ हैं। इनसे युक्त के सत्यमहाव्रत निर्मल होता है।।३।।

अदेहणं भावणं चावि, उग्गहं य परिग्गहे।
संतुट्ठो भत्तपाणेसु, तिदियं वदमस्सिदो।।४।।
इत्थिकहा इत्थिसंसग्ग - हास - खेड - पलोयणे।
णियमम्मि ट्ठिदो णियत्तो य, चउत्थं वदमस्सिदो।।५।।
सचित्ताचित्त - दव्वेसु, बज्झंब्भंतरेसु य।
परिग्गहादो विरदो, पंचमं वदमस्सिदो।।६।।

अदेहनं-यह तन ही धन है यह देह अशुचि आदी भावन।
अवग्रह-गतपरिग्रह अशन पान में संतुष्टी व्रत की तृतियन।।४।।
स्त्री की कथा व संसर्ग अरु हास्य व क्रीडा अवलोकन।
इन सबको राग से नहिं करना चौथे व्रत में स्थिरीकरण।।५।।
सचित्त अचित्त द्रव्य अरु बाह्य अभ्यंतर द्रव्य व परिग्रह से।
विरती ये पांच भावनाएं, पाँचवें महाव्रत की ही हैं।।६।।

तृतीय अचौर्य व्रत के आश्रित मैं पांच भावनाओं में तत्पर होता हूँ। वे भावनाएं ये हैं अदेहन अर्थात् कर्मवश जो मैंने देह का उपार्जन किया है, वह ही मेरे धन है, अन्य परिग्रह नहीं है। ऐसी भावना भाता हूँ। यहां पृषोदरादि इत्यादि वाक्य से ध का लोप होकर अदेहधन के स्थान में अदेहन बन गया है। देह में ही अशुचित्व, अनित्यत्व आदि भावना है उसको भी भाता हूँ। परिग्रह में अवग्रह अर्थात् निवृत्ति की भावना भाता हूँ। भक्त, पान आदि चतुर्विध आहार में सन्तुष्ट अर्थात् गृद्धि-रहित होता हूँ। इन भावनाओं को भाने वाले के तीसरा महाव्रत निर्मल होता है।।४।।

मैथुन से विरति लक्षण चतुर्थ ब्रह्मव्रत को मैं आश्रित हुआ हूँ मैं स्त्री कथा, स्त्री संसर्ग, स्त्रियों के साथ हास्य विनोद, स्त्रियों के साथ क्रीड़न और उनके मुखादि अंगों का रागभाव से अवलोकन इन सब ब्रह्मचर्य के विघातकों में चूँकि नियम से स्थित हूँ इसलिए निवृत्त होता हूँ। इन भावनाओं से चतुर्थ व्रत निर्मल होता है।।५।।

परिग्रह से विरति लक्षण पंचम व्रताश्रित मैं दासी, दास आदि सचित्त द्रव्य में और धन-धान्य आदि अचित्त द्रव्य में तथा वस्त्र, आभरण आदि बाह्य द्रव्य

धिदिमंतो खमाजुत्तो, झाणजोग-परिट्ठिदो।
परीसहाणउरं देंत्तो, उत्तमं वदमस्सिदो।।७।।
जो सारो सव्वसारेसु, सो सारो एस गोयम।।
सारं झाणंति णामेण, सव्वं बुद्धेहिं देसिदं।।८।।
इच्चेदाणि पंचमहव्वयाणि राईभोयणादो वेरमणछट्ठाणि सभावणाणि समाउग्ग-पदाणि सउत्तर-पदाणि सम्मं धम्मं अणुपा-

---

उत्तमव्रत है वो ही जो धैर्य सहित अरु क्षमायुक्त होता।
जो ध्यान योग में स्थित परिषह सहने में अभिमुख रहता।।७।।
सब सारों में जो सार अहो गौतम! वह सार सर्व उत्तम।
जो "ध्यान" नाम से कहा वही है सार सर्वकेवलि भणितं।।८।।
ये पांच महाव्रत रात्रीभोजनविरति छठे अणुव्रतयुत हैं।
भावनासहित मातृकापदों युत उत्तरपदयुत-गुणयुत हैं।।९।।

में और ज्ञानावरणादि आभ्यन्तर द्रव्य में तथा गृह क्षेत्र आदि अन्य सब परिग्रह से विरत होता हूँ। इस प्रकार की पाँच भावनाओं को भाने वाले के परिग्रह विरति व्रत निर्मल ठहरता है। (ये पाँचों व्रत प्रतिज्ञारूप हैं, क्योंकि अभिसन्धि-पूर्वक किया हुआ नियम व्रत होता है ऐसा कहा गया है)।।६।।

उत्तम व्रत (प्रतिज्ञा) आश्रित वही होता है जो धृतिमान्, सन्तुष्ट इस लोक और परलोक की आकांक्षा से रहित है, उत्तम क्षमा-युक्त है, ध्यानयोग में सब ओर से स्थित है और परीषहों को सहन करता है।।७।।

जगदन्तर्वर्ती सब वस्तुओं में सार व्रत हैं उनमें सार हे गौतम! ध्यान है, क्योंकि 'सारं ध्यानं' इस नाम से सब बुद्धों (सर्वज्ञों) ने ध्यान को सार कहा है।।८।।

इस प्रकार पच्चीस भावनाओं सहित, अष्ट प्रवचनमातृकाओं सहित और उत्तर पदों सहित पाँच महाव्रत और रात्रिभोजन विरति—छठा अणुव्रत ये महान हैं। जो सम्यक्धर्म हैं उनका अनुपालन कर श्रमण निर्ग्रंथत्वपने से सिद्ध

लइत्ता समणा भयवंता णिग्गंथादोओण सिज्झंति बुज्झंति मुच्चंति परिणियंति सव्वदुक्खाण-मंतं करेंति परिविज्जाणंति[१]।

इति श्रीगौतमगणधरवाण्यां सप्तमोऽध्यायः।।७।।

इस सम्यक् धर्म का अनुपालन करके भगवान श्रमण मुनिवर।
निर्ग्रंथलिंग से सिद्ध बुद्ध होते व मुक्त होते सुखकर।।१०।।
परिनिर्वृत होते सर्वदुखों का अंत करें त्रिभुवन जानें।
यह श्रमणधर्म ही शिवप्रद है इसको धारें भव दुख हाने।।११।।

इति श्रीगौतमगणधरवाण्यां सप्तमोऽध्यायः।।७।।

स्वात्मोपलब्धि को प्राप्त होते हैं, हेयोपादेय विवेक से सम्पन्न बुद्ध होते हैं, मुक्त होते हैं, संसार से पार होते हैं, सब दुःखों का अंत करते हैं और परिनिर्वाण को प्राप्त होते हैं।

इस प्रकार श्रीगौतम गणधर वाणी में सप्तम अध्याय पूर्ण हुआ।

निर्वाण प्राप्त सिद्धों की वंदना

अट्ठावयम्मि उसहो, चंपाए वासुपुज्जजिणणाहो।
उज्जंते णेमिजिणो, पावाए णिव्वुदो महावीरो।।5।।

(श्री कुंदकुंददेवकृत–निर्वाणभक्ति गाथा-1)

अर्थ–भगवान ऋषभदेव कैलाश पर्वत से, भगवान वासुपूज्य चंपापुरी से, भगवान नेमिनाथ गिरनार पर्वत से और भगवान महावीरस्वामी पावापुरी से निर्वाण को प्राप्त हुये हैं।

---

१. पाक्षिक प्रतिक्रमण से उद्धृत।

(८) पडिक्कमामि भंते!

पडिक्कमामि भंते! एक्के भावे अणाचारे, वेसु रायदोसेसु, तीसु दंडेसु, तीसु गुत्तीसु, तीसु गारवेसु, चउसु कसाएसु, चउसु सण्णासु, पंचसु महव्वएसु, पंचसु समिदीसु, छसु जीवणिकाएसु, छसु आवासएसु, सत्तसु भएसु, अट्ठसु मएसु, णवसु बंभचेरगुत्तीसु, दसविहेसु समणधम्मेसु, एयारसविहेसु उवासयपडिमासु, वारसविहेसु भिक्खुपडिमासु, तेरसविहेसु किरियाट्ठाणेसु, चउदसविहेसु भूदगामेसु, पण्णरसविहेसु पमायठाणेसु, सोलसविहेसु पवयणेसु, सत्तारसविहेसु असंजमेसु, अट्ठारसविहेसु

पद्यानुवाद

हे भगवन् ! मैं प्रतिक्रमण करूँ, है एक भाव जो अनाचार।
दो रागद्वेष त्रय गुप्ति त्रिदंड, त्रिगारव और कषाय चार।।१।।
चउ संज्ञा पांच महाव्रत पण, समिती छह जीव निकाय कहे।
छह आवश्यक भय सात आठ-मद ब्रह्मचर्यगुप्ती नव हैं।।२।।
दश श्रमण धर्म ग्यारह प्रतिमा, बारहविध भिक्षू प्रतिमा हैं।
तेरह विध क्रियास्थान चतुर्दश, भूत व प्रमाद पंद्रह हैं।।३।।
सोलह प्रवचन सत्रहों असंयम असंपराय अठारह हैं।
उन्नीस नाथ अध्ययन कथा असमाधिस्थान सुबीस कहें।।४।।

पडिक्कमामि भंते ! का अर्थ

हे भगवन्! एक अनाचार परिणाम, दो रागद्वेषपरिणाम, तीन गुप्ति, तीनदंड, तीन गारव, चारकषाय, चारसंज्ञा, पांच महाव्रत, पांच समिति, छह जीवनिकाय, छह आवश्यक, सात भय, आठ मद, नव ब्रह्मचर्यगुप्ति, दशप्रकार श्रमणधर्म, ग्यारह प्रकार उपासक प्रतिमा, बारह प्रकार भिक्षु प्रतिमा, तेरह प्रकार क्रियास्थान, चौदह प्रकार भूतग्राम, पन्द्रह प्रमादस्थान, सोलह प्रकार प्रवचन, सत्रह प्रकार असंयम, अठारह प्रकार असंपराय, उन्नीस प्रकार नाथोध्ययन, बीस असमाधिस्थान, इक्कीस सबलक्रिया, बाईस परीषह, तेईस सूत्रकृताध्ययन,

असंपराएसु, उणवीसाए णाहज्झाणेसु[१], वीसाए असमाहिट्ठाणेसु, एक्कवीसाए सबलेसु, बावीसाए परीसहेसु, तेवीसाए सुद्दयडज्झाणेसु, चउवीसाए अरिहंतेसु, पणवीसाए भावणासु, पणवीसाए किरियट्ठाणेसु, छव्वीसाए पुढवीसु, सत्तावीसाए अणगारगुणेसु, अट्ठावीसाए आयारकप्पेसु, एउणतीसाए पावसुत्तपसंगेसु, तीसाए मोहणीयठाणेसु, एक्कत्तीसाए कम्मविवाएसु, बत्तीसाए जिणोवएसेसु, तेत्तीसाए अच्चासणदाए, संखेवेण जीवाणं अच्चासणदाए, अजीवाणं अच्चासणदाए, णाणस्स अच्चासणदाए, दंसणस्स अच्चासणदाए,

---

इक्कीस सबल बाइस परिषह तेईस सूत्रकृत अध्ययन हैं।
चौबिस अरहंतदेव पचीस भावना पृथ्वी छब्बिस हैं।।५।।
सत्ताइस विध अनगार सुगुण अरु मूलसुगुण अट्ठाइस हैं।
उनतीस पापसूत्रं प्रसंग मोहनीय थान भी तीस कहे।।६।।
इकतीसहिं कर्मोदय विपाक बत्तिस विध जिन उपदेश कहे।
तेतिस अत्यासादना दोष इन सबमें जो कुछ दोष हुए।।७।।
संक्षेप से आसादना सात में जीवों के आसादन से।
अजीव के आसादन ज्ञानासादन दर्शन सादन से।।८।।
चारित आसादन तप का आसादन वीर्यासादन से भी।
मैं सबकी गर्हा करता हूँ दुश्चरित किये पहले जो भी।।९।।

चौबीस अर्हन्त, पच्चीस भावना, पच्चीस क्रियास्थान, छब्बीस पृथिवी, सत्ताईस अनगारगुण, अट्ठाईस आचारकल्प, उनतीस पापसूत्र प्रसंग, तीस मोहनीयस्थान, इकत्तीस कर्म विपाक, बत्तीस जिनोपदेश, तेतीस आसादना, संक्षेप से जीवों की अत्यासादना, अजीवों की अत्यासादना, ज्ञान की अत्यासादना, दर्शन की अत्यासादना, वीर्य की अत्यासादना इन सब में जो कुछ मन, वचन और काय से भूतकाल में दुष्ट चेष्टा हुई अर्थात् जो पालने योग्य हैं उनका पालन नहीं किया, जो पालने योग्य नहीं थे उनका पालन किया, उन सब दुश्चरित की पर साक्षी से हा ! मैंने दुष्ट कार्य किया, इत्यादि पश्चात्ताप पूर्वक गर्हा करता हूँ,

१. प्रतिक्रमण ग्रंथत्रयी के आधार से।

चरित्तस्स अच्चासणदाए, तवस्स अच्चासणदाए, वीरियस्स अच्चासणदाए, तं सव्वं पुव्वं दुच्चरियं गरहामि, आगामेसीएसु पच्चुपण्णं इक्कंतं पडिक्कमामि, अणागयं पच्चक्खामि, अगरहियं गरहामि, अणिंदियं णिंदामि, अणालोचियं आलोचेमि, आराहणमब्भुट्ठेमि, विराहणं पडिक्कमामि इत्थ मे जो कोई देवसिओ (राईओ) अइचारो अणाचारो तस्स मिच्छा मे दुक्कडं[१]।।९।।

इति श्रीगौतमगणधरवाण्यां अष्टमोऽध्यायः।।८।।

मैं वर्तमान के दोषों को प्रतिक्रमण विधी से दूर करूँ।
आगे होने वाले दोषों का भी मैं प्रत्याख्यान करूँ।।१०।।
जिन दोषों की गर्हा नहिं की, मैं उनकी गर्हा करता हूँ।
जिन दोषों की निंदा नहिं की, अब उनकी निंदा करता हूँ।।११।।
जिनका आलोचन नहीं किया, उनका आलोचन करता हूँ।
आराधन चउ स्वीकार करूँ विराधन का प्रतिक्रम करता हूँ।।१२।।
मुझ से इन सबमें जो कुछ भी दिनभर में (रात्री में) अतीचार हुए हों।
या अनाचार भी हुए प्रभो! वह दुष्कृत मेरा मिथ्या हो।।१३।।

इति श्रीगौतमगणधरवाण्यां अष्टमोऽध्यायः।।

प्रत्युत्पन्न दुश्चरित्र को प्रतिक्रमण द्वारा निराकरण करता हूँ, भावी दुश्चरित्र का त्याग करता हूँ अविवेक से मैंने जो पहले दुश्चरित्र किया, उसकी गर्हा नहीं की अब उसकी गर्हा करता हूं, जिसकी आत्मसाक्षी से निन्दा नहीं की उसकी निन्दा करता हूँ, जिसकी पहले आलोचना नहीं की, उसकी अब आलोचना करता हूँ, आराधना का (रत्नत्रय का) अनुष्ठान करता हूँ, रत्नत्रय की विराधना का प्रतिक्रमण करता हूँ, इनमें जो कोई दैवसिक (रात्रिक) अतिचार, अनाचार हुआ है उसी अतिचार आदि सम्बन्धी दुष्कृत मेरे मिथ्या हों, इस प्रकार अनुष्ठान योग्य–अयोग्य उक्त सब में लगे दोषों का प्रतिक्रमण द्वारा निराकरण करता हूँ।।९।।

इस प्रकार श्रीगौतम गणधर वाणी में अष्टम अध्याय पूर्ण हुआ।

---

१. दैवसिक प्रतिक्रमण से उद्धृत।

(९) इच्छामि भंते!

इच्छामि भंते! पडिक्कमणमिदं, सुत्तस्स मूलपदाणं उत्तरपदाणमच्चासणदाए। तं जहा–

णमोक्कारपदे अरहंतपदे सिद्धपदे आइरियपदे उवज्झायपदे साहुपदे मंगलपदे लोगोत्तमपदे[१] सरणपदे सामाइयपदे चउवीस-तित्थयरपदे[२] वंदणपदे पडिक्कमणपदे पच्चक्खाणपदे काउसग्गपदे असीहियपदे णिसीहियपदे अंगंगेसु पुव्वंगेसु पइण्णएसु पाहुडेसु पाहुडपाहुडेसु कदकम्मेसु वा भूदकम्मेसु वा णाणस्स अइक्कमणदाए दंसणस्स अइक्कमणदाए चरित्तस्स अइक्कमणदाए तवस्स अइक्कमणदाए वीरियस्स अइक्कमणदाए, से अक्खरहीणं वा पदहीणं वा सरहीणं वा वंजणहीणं

पद्यानुवाद

हे भगवन्! सूत्र के मूलपदों उत्तरपद के आसादन से।
जो दोष हुए उनका प्रतिक्रमण करूं मैं सो वह इस विध से।।१।।
जो नमस्कारपद अर्हत् पद अरु सिद्धपदाचार्यपद में।
उपाध्यायपद साधूपद मंगलपद लोकोत्तम पद में।।२।।
शरणंपद सामायिकपद चौबिस तीर्थंकर पद वंदनपद में।
प्रतिक्रमण व प्रत्याख्यान रु कायोत्सर्ग असहि निसहि पद में।।३।।

इच्छामि भंते ! का अर्थ

हे भगवन् ! सूत्र (आगम) के मूलपदों की और उत्तर पदों की अत्यासादनता (अवहेलना) होने पर जो कोई दोष उत्पन्न हुआ है उस दोष के निराकरण करने की इच्छा करता हूँ। तद्यथा इसके द्वारा वही कहते हैं–

णमो अरहंताणं इत्यादि पंचनमस्कारपद, अर्हंतपद, सिद्धपद, आचार्यपद, उपाध्यायपद, साधुपद, चत्तारिमंगलं इत्यादि मंगलपद, चत्तारि लोगोत्तमा इत्यादि लोकोत्तमपद, चत्तारिसरणं पव्वज्जामि इत्यादि शरण पद, करेमि भंते! सामाइयं इत्यादि सामायिकपद, उसहमजियं च वंदे इत्यादि चतुर्विंशति तीर्थंकरपद, सिद्धानुद्भूत इत्यादि और जयति भगवान् इत्यादि वन्दनापद, पडिक्कमामि भंते इत्यादि प्रतिक्रमणपद, भन्ते

---

१. 'लोगुत्तमपदे' इति पाठः। २. चउवीसं तित्थ.....इति पाठः।

वा अत्थहीणं वा गंथहीणं वा थएसु वा थुईसु[१] वा अट्ठक्खाणेसु वा अणियोगेसु[२] वा अणियोगद्दारेसु[३] वा जे भावा पण्णत्ता अरहंतेहिं भयवंतेहिं तित्थयरेहिं आदि-यरेहिं तिलोगणाहेहिं तिलोग-बुद्धेहिं तिलोग-दरसीहिं ते सद्दहामि ते पत्तियामि ते रोचेमि ते फासेमि, ते सद्दहंतस्स ते पत्तयंतस्स ते रोचयंतस्स ते फासयंतस्स जो मए देवसिओ राईओ अदिक्कमो वदिक्कमो अइचारो अणाचारो आभोगो अणाभोगो अकाले सज्झाओ

अंगों में पूर्वों में व प्रकीर्णक प्राभृत प्राभृतप्राभृत में।
कृतकर्मों[४] भूतकर्म[५] में आसादन से दोष विशोधूं मैं।।४।।
ज्ञान में जो आसादन की दर्शन चरित्र तप वीरज में।
आसादन कर जो दोष किये उन सबका शोधन करता मैं।।५।।
इनमें अक्षर से हीन व पद से हीन व स्वर से हीन पढ़ा।
व्यंजन से हीन व अर्थहीन या ग्रंथहीन जु अशुद्ध पढ़ा।।६।।
स्तव स्तुति अर्थाख्यानों के अनुयोगों के पढ़ने में।
अनुयोगद्वार में हीन आदि दोषों का प्रतिक्रमण करता मैं।।७।।

पच्चक्खामि इत्यादि प्रत्याख्यानपद, नवसंख्या प्रमाण पंचनमस्कार का उच्चारण लक्षण तथा अठारह, सत्ताईस, छत्तीस, एकसौ आठ इत्यादि संख्या लक्षण कायोत्सर्गपद, असहि, निसहिपद इन सब पदों में अत्यासादनता होने पर तथा आचारादि अंगपद, अंगों के अधिकारपद, संख्या आदि अंगांगपद उत्पाद पूर्वादि पूर्वांग, वस्तु प्रभृति पूर्व, पूर्वांग, प्रकीर्णक, प्राभृत, प्राभृत–प्राभृत पूर्वकृत षडावश्यकादि कर्म अथवा शुभ और अशुभ मन, वचन और काय के व्यापार अथवा तन्निबन्धन पुण्य पापकर्मरूप कृतकर्म, भूत, अविद्यमान और वर्तमान में उक्त षडावश्यक कर्म इन उक्त सब में उत्पन्न दोष का प्रतिक्रमण करने की इच्छा करता हूँ तथा ज्ञान की अत्यासादनता, दर्शन की अत्यासादनता, चारित्र की अत्यासादनता, तप की अत्यासादनता और वीर्य की अत्यासादनता–सम्बन्धी दोषों का प्रतिक्रमण करता हूँ तथा अनेक तीर्थंकरों के गुणों का वर्णन करने वाले स्तवों में, एक तीर्थंकर के गुण वर्णन करने वाली स्तुतियों में, चरित्र–पुराण प्रतिबद्ध अर्थाख्यानों में, करणानुयोगादि अनुयोगों में और कृतिवेदनादि चौबीस अनुयोगद्वारों में अक्षरहीन, पदहीन,

१. 'थुइसु' इति पाठ। २. 'अणि ओगओगेसु इति पाठः। ३. 'अणि ओगदारेसु' इति पाठः। ४. पूर्व में की गई छह आवश्यक आदि क्रियाएं अथवा शुभ–अशुभ मन–वचन–काय की क्रियाएँ और उनके निमित्त से हुए पुण्य–पाप कर्म, इमनें जो आसादना हुई हो। ५. भूत–अविद्यमान में।

कओ काले वा परिहाविदो अत्थाकारिदं मिच्छामेलिदं (आमेलिदं) वामेलिदं अण्णहादिण्णं अण्णहापडिच्छदं आवासएसु पडिहीणदाए तस्स मिच्छा मे दुक्कडं[१]।

इति श्रीगौतमगणधरवाण्यां नवमोऽध्यायः।।९।।

अर्हंतदेव भगवंत तीर्थंकर आदीकर त्रैलोक्यनाथ।
त्रिभुवनज्ञानी त्रिभुवनदर्शी ने प्रतिपादे हैं जो पदार्थ।।८।।
उनकी मैं श्रद्धा करता हूँ उनकी ही प्राप्ती करता हूँ।
उनमें ही मैं रुचि रखता हूँ उनका ही स्पर्श करता हूँ।।९।।
इनकी श्रद्धा करते हुए अरु इनकी प्राप्ती करते हुए जो।
इनमें रुचि रखते हुए तथा इनका स्पर्श करते हुए जो।।१०।।
मैंने दैवसिक व रात्रिक पाक्षिक आदिक में जो दोष किये।
अतिक्रम व्यतिक्रम अतिचार अनाचार आभोग अनाभोग किये।।११।।
जो अकाल में स्वाध्याय किया अरु काल में स्वाध्याय नहीं किया।
सहसा किया बिना विवेक किया मिथ्या के साथ मिलाय दिया।।१२।।
अन्यथा पढ़ा अन्यथा कहा अन्यथा ग्रहण कीया भी जो।
आवश्यक में परिहानी की सब दुष्कृत मेरा मिथ्या हो।।१३।।

इति श्रीगौतमगणधरवाण्यां नवमोऽध्यायः।।९।।

स्वरहीन, अर्थहीन और ग्रंथहीन दोष का प्रतिक्रमण करने की इच्छा करता हूँ। अर्हंत, भगवान् तीर्थंकर, त्रिलोकनाथ ने जो जीवादि पदार्थ आगम में प्रतिपादन किये हैं उनका श्रद्धान करता हूँ, प्राप्त करता हूँ, रुचि रखता हूँ, विश्वास करता हूँ, उनका श्रद्धान करने वाले, प्राप्त करने वाले, रुचि रखने वाले, विश्वास करने वाले जो मेरे दैवसिक, रात्रिक, पाक्षिक, चातुर्मासिक, संवत्सरिक अतिक्रम, व्यतिक्रम, अतिचार, अनाचार, आभोग, अनाभोग दोष लगा, अकाल में स्वाध्याय किया, स्वाध्याय काल में स्वाध्याय नहीं किया, सहसा किया, बिना विचारे जल्दी–जल्दी उच्चारण किया, मिथ्या अविद्यमान के साथ मिलाया, अन्य अवयव को अन्य अवयव के साथ जोड़कर पद्य, उच्चध्वनि–युक्त का नीचध्वनि से और नीचध्वनियुक्त पाठ को उच्चध्वनि से पढ़ा, अन्यथा कहा, अन्यथा ग्रहण किया यानी सुना, आवश्यकों में परिहीनता की, इन सब दोषों से उत्पन्न मेरा दुष्कृत मिथ्या होवे।

इस प्रकार श्रीगौतम गणधर वाणी में नवमां अध्याय पूर्ण हुआ।

१. पाक्षिक प्रतिक्रमण से उद्धृत।

(१०) वीरभक्तिः

यः सर्वाणि चराचराणि विधिवद्-द्रव्याणि तेषां गुणान्।
पर्यायानपि भूतभाविभवतः, सर्वान् सदा सर्वदा।
जानीते युगपत् प्रतिक्षणमतः, सर्वज्ञ इत्युच्यते
सर्वज्ञाय जिनेश्वराय महते, वीराय तस्मै नमः।।१।।

वीरः सर्वसुरासुरेन्द्रमहितो, वीरं बुधाः संश्रिताः
वीरेणाभिहतः स्वकर्मनिचयो, वीराय भक्त्या नमः।

पद्यानुवाद

—चौबोल छंद—

जो विधिवत् सब लोक चराचर, द्रव्यों को उनके गुण को।
भूत भविष्यत् वर्तमान, पर्यायों को भी नित सबको।।
युगपत समय-समय प्रति जाने, अतः हुए सर्वज्ञ प्रथित।
उन सर्वज्ञ जिनेश्वर महति, वीर प्रभु को नमूँ सतत।।१।।

वीर सभी सुर असुर इन्द्र से, पूज्य वीर को बुध सेवें।
निज कर्मों को हता वीर ने, नमः वीर प्रभु को मुद से।।

वीरभक्ति का अर्थ

जो सम्पूर्ण चर–अचर द्रव्यों को उनके सहभावी गुणों को और क्रमभावी भूत, भावी तथा वर्तमान सब पर्यायों को भी सदा सर्वकाल अशेष विशेषों को लिये हुए युगपत् काल क्रम से रहित एक साथ प्रतिक्षण जानते हैं, इसलिए उन्हें सर्वज्ञ कहते हैं, उन सर्वज्ञ महान गुणोत्कृष्ट अन्तिम तीर्थंकर वीर जिनेश्वर को नमस्कार हो। वीर जिनेश्वर सब सुरेन्द्रों और असुरेन्द्रों द्वारा पूजित हैं। वीर जिनेश्वर को गणधरादि बुधजन संसार समुद्र से पार होने के लिए आश्रय करते हैं, वीर जिनेश्वर ने अपने और पर के कर्मों के समूह को विनष्ट किया है। वीर भगवान को भक्ति से सिर झुकाकर नमस्कार करता हूँ। वीर! जिनसे भव–

वीरात्तीर्थमिदं प्रवृत्तमतुलं, वीरस्य वीरं तपो
वीरे श्री द्युति-कान्ति-कीर्ति-धृतयो, हे वीर! भद्रं त्वयि।।२।।
ये वीरपादौ प्रणमन्ति नित्यं, ध्यानस्थिताः संयमयोगयुक्ताः।
ते वीतशोका हि भवन्ति लोके, संसारदुर्गं विषमं तरंति।।३।।
व्रतसमुदयमूलः संयमस्कन्धबन्धो,
यमनियमपयोभिर्वर्धितः शीलशाखः।
समितिकलिकभारो गुप्तिगुप्तप्रवालो
गुणकुसुमसुगन्धिः सत्तपश्चित्रपत्रः।।४।।

अतुल प्रवर्ता तीर्थ वीर से, घोर वीर प्रभु का तप है।
वीर में श्री द्युति कांति कीर्ति, धृति हैं हे वीर! भद्र तुममें।।२।।

जो नित वीर प्रभू के चरणों, में प्रणमन करते रुचि से।
संयम योग समाधीयुत हो, ध्यान लीन होते मुद से।।
इस जग में वे शोक रहित हो, जाते हैं निश्चित भगवन् ।
यह संसार दुर्ग विषमाटवि, इसको पार करें तत्क्षण।।३।।

व्रत समुदाय मूल है जिसका, संयममय स्कंध महान् ।
यम अरु नियम नीर से सिंचित, बढ़ी सुशाखाशील प्रधान।।

सागर से तारने वाला यह अतुल तीर्थ प्रवृत्त हुआ है। वीर जिनेश्वर का बाह्य और अभ्यन्तर तप भारी दुष्कर था जो औरों में नहीं पाया जाता था। वीर जिनमें बाह्याभ्यन्तर लक्ष्मी, शरीर की ज्योति, कान्ति, कीर्ति, धृति ये सब गुण विद्यमान हैं। इसलिए हे वीर ! आप में कल्याण है।।२।। ध्यान में एकाग्रता को प्राप्त हुए, संयम से उपलक्षित योग से युक्त होते हुए जो भव्य पुरुष वीर भगवान के चरणों को नित्य प्रणाम करते हैं वे लोक में शोक से विमुक्त होते हैं और विषम संसाररूपी अटवी के पार पहुँच जाते हैं।।३।।

जिसका व्रतों का समुदाय मूल—जड़ है, संयम—स्कन्धबन्ध है, जो यम– नियमरूप जल से वृद्धिंगत है, अठारह हजार शील जिसकी शाखाएं हैं, जिसमें समितियाँरूप कलिकाएं भरी हैं, गुप्तियां प्रवाल (पल्लव) है, चौरासी

शिवसुखफलदायी यो दयाछाययोद्यः (द्‌घः)
शुभजनपथिकानां खेदनोदे समर्थः।
दुरितरविजतापं प्रापयन्नन्तभावं
स भवविभवहान्यै नोऽस्तु चारित्रवृक्षः।।५।।

चारित्रं सर्वजिनैश्चरितं, प्रोक्तं च सर्वशिष्येभ्यः।
प्रणमामि पंचभेदं, पंचमचारित्रलाभाय।।६।।

समिति कली से भरित गुप्तिमय, कोंपल से सुन्दर तरु है।
गुण कुसुमों से सुरभित सत्तप, चित्रमयी पत्तों युत है।।४।।
शिवसुख फलदायी यह तरुवर, दयामयी छाया से युत।
शुभजन पथिक जनों के खेद, दूर करने में समरथ नित।।
दुरित सूर्य के हुए ताप का, अन्त करे यह श्रेष्ठ महान् ।
वर चारित्र वृक्ष कल्पद्रुम, करे हमारे भव की हान।।५।।
सभी जिनेश्वर ने भवदुःखहर, चारित को पाला रुचि से।
सब शिष्यों को भी उपदेशा, विधिवत् सम्यक् चारित ये।।
पाँच भेद युत सम्यक् चारित, को प्रणमूँ मैं भक्ती से।
पंचम यथाख्यात चारित की, प्राप्ति हेतु वंदूँ मुद से।।६।।

लाख गुणरूप पुष्पों की सुगन्धि है, सम्यक्त्व विचित्र पत्र हैं जो मोक्षरूपी फल को देने वाला है, दयारूप छाया से प्रशस्त है, भव्यजनरूप पथिकों के सन्ताप को दूर करने में समर्थ है, ऐसा पापरूप सूर्य के सन्ताप का अन्त—नाश करने वाला वह चारित्ररूप वृक्ष हमारे संसार में जो गत्यादि नाना भव हैं उनके विनाश के लिए होवे।।४-५।। सब तीर्थंकरों ने स्वयं चारित्र का अनुष्ठान किया है और सब शिष्यों के लिए जैसा है वैसा स्पष्ट कहा है। अतः सब कर्मों के क्षय के साधक पंचम यथाख्यातचारित्र की प्राप्ति के लिए सामायिकादि पांच भेदों से समन्वित चारित्र को मैं प्रणाम करता हूँ।।६।।

धर्मरूप चरित्र स्वर्ग और अपवर्ग सम्बन्धी सब सुखों का आकर अर्थात् उत्पत्ति स्थान है। सब जीवों के हित का करने वाला है, चारित्ररूप इस धर्म को

धर्मः सर्वसुखाकरो हितकरो, धर्मं बुधाश्चिन्वते।
धर्मेणैव समाप्यते शिवसुखं, धर्माय तस्मै नमः।
धर्मान्नास्त्यपरः सुहृद्‌भवभृतां, धर्मस्य मूलं दया,
धर्मे चित्तमहं दधे प्रतिदिनं, हे धर्म! मां पालय।।७।।

धम्मो मंगलमुद्दिट्ठं (मुक्किट्ठं), अहिंसा संयमो तवो।
देवा वि तस्स पणमंति, जस्स धम्मे सया मणो[१]।।८।।

इति श्रीगौतमगणधरवाण्यां दशमोऽध्यायः।।१०।।

धर्म सर्वसुख खानि हितंकर, बुधजन करें धर्म संचय।
शिवसुखप्राप्त धर्म से होता, उसी धर्म के लिए नमन।।
धर्म से अन्य मित्र नहिं जग में, दयाधर्म का मूल कहा।
मन को धरूँ धर्म में नित, हे धर्म! करो मेरी रक्षा।।७।।
धर्म महा मंगलमय है यह, कहा वीर प्रभु ने जग में।
प्रमुख अहिंसा संयम तप भी, धर्म सदा उत्तम सब में।।
जिसके मन में सदा धर्म है, सुरगण भी उसको प्रणमें।
मैं भी नमूं धर्म को संतत, धर्म बसो मेरे मन में।।८।।

इति श्रीगौतमगणधरवाण्यां दशमोऽध्यायः।।१०।।

सभी विवेकशील तीर्थंकर आदि संचित करते हैं। धर्म से ही मोक्ष सुख की प्राप्ति होती है। उस धर्म के लिए नमस्कार हो, धर्म के सिवा और कोई संसारी जीवों का उपकारक मित्र नहीं है। धर्म का मूल दया है। इस प्रकार के धर्म में मैं प्रतिदिन चित्त लगाता हूँ। हे धर्म तू मेरा पालन कर।।७।।

यह चारित्ररूप धर्म उत्कृष्ट मंगल है अर्थात् मल को गालन–दूर करने वाला और सुख को देने वाला है। धर्म ही नहीं अहिंसा, संयम और तप भी परमोत्कृष्ट मंगल हैं, क्योंकि जिसका मन धर्म में सदा तल्लीन है उस को देव भी नमस्कार करते हैं।।८।।

इस प्रकार श्रीगौतम गणधर वाणी में दशवां अध्याय पूर्ण हुआ।

---

१. दैवसिक प्रतिक्रमण से उद्धृत।

अन्त्य प्रार्थना

अर्हत्प्रभुकथितार्थं, ग्रथितं गणधारकैः।
नौमि भक्त्या शिरसाहं, श्रुतज्ञानमहोदधिम्।।१।।
धर्मतीर्थस्य कर्तारं, महावीरजिनं नुमः।
द्वादशांगस्य कर्तारं, नौमि गौतमस्वामिनम्।।२।।
वीरदिव्यध्वनेः प्राप्ता, वाणी श्रीगौतमस्य या।
सारं सारं गृहीत्वात्र, मनाक् संकलितं मया।।३।।
यद्हीनाधिक-दोषादि-जातं मातः! सरस्वति!।
मां क्षमस्व कृपां कृत्वा, भावश्रुतं प्रयच्छ मे।।४।।
यः पठति दशाध्यायं, श्रीगौतमवचोऽमृतम्।
सः श्रुतज्ञानमत्यामा[१], पूर्णज्ञानश्रियं श्रयेत्।।५।।

दोहा-पद्यानुवाद

अर्हन् भाषित अर्थमय, गणधर गुंफित ग्रंथ।
श्रुतज्ञानाब्धी को नमूँ, भक्ती युक्त शिर नम्य।।१।।
धर्मतीर्थ कर्ता नमूं, महावीर भगवान्।
द्वादशांग कर्ता नमूं, गौतम गणी महान्।।२।।
वीर दिव्यध्वनि से प्रगट, श्री गौतम की वाणि।
सार सार को संकलन, किया सुगणधर वाणि।।३।।
हीनाधिकादि दोष जो, हुये सरस्वति मात!।।
क्षमा करो कर कृपा मम, देवो भावश्रुत मात!।।४।।
श्रीगौतमवच सुधा जो, पढ़े दशाध्याय पूर्ण।
वे श्रुतज्ञानमती सहित, लहें ज्ञानश्री पूर्ण।।५।।

।।समाप्तम्।।

१. ज्ञानमत्या-अमा-सह।

प्रशस्तिः

महावीर ! नमस्तुभ्यं, महाकल्पद्रुमाय ते।
अचिन्त्यफलदात्रे नो, नमस्तुभ्यमनन्तशः।।1।।
वीरदिव्यध्वनिं श्रुत्वा, द्वादशांगविधायिने।
ग्रंथकर्त्रे गणीन्द्राय, नमो गौतमस्वामिने।।2।।
श्री वीरशासने सूरिः, कुन्दकुन्दगुरुर्महान्।
मूलसंघे च तन्नाम्ना, कुंदकुंदान्वयोऽभवत्।।3।।
गच्छे सरस्वती नाम्नि, बलात्कारगणे शुभे।
चारित्रचक्रभृत्सूरिः प्रथमः शांतिसागरः।।4।।
श्रीवीरसागराचार्यस्तस्य पट्टाधिपोऽभवत्।
महाव्रतप्रदातारं गुरुं गुरोर्गुरुं नुवे।।5।।
त्र्येकषट्द्वितमे वीर-जयंतीदिवसे[1] शुभे।
चैत्रशुक्लात्रयोदश्यां, ग्रन्थोऽयं पूर्यते मया।।6।।
श्री गौतमगणीन्द्रस्य, वाणी ह्यमृतवर्षिणी।
संकलितामृतं दद्यात्, स्यान्नोऽमृतपदाप्तये।।7।।
यावज्जैनेंद्रधर्मोऽयं, वर्तते भुवि क्षेमकृत्।
पूर्णां ज्ञानमती कुर्यात्, तावत्स्थेयादयं कृतिः।।8।।

इति श्रीगौतमगणधरवाणी प्रशस्ति समाप्ता।

1. आज वीरजयंती 2613 वीं है। वीर निर्वाण संवत् 2540 चल रहा है।

हिंदी पद्य-प्रशस्तिः

महाकल्पद्रुम वीर प्रभु, फल अचिन्त्य दातार।
महावीर भगवान को, नमूं अनन्तों बार।।1।।

वीर दिव्यध्वनि श्रवण कर, द्वादशांग करतार।
गौतम गणधर ग्रंथकृत्, नमूं उन्हें शत बार।।2।।

श्री वीरशासन प्रथित, कुंदकुंद आचार्य।
मूलसंघ में नाम से, कुंदकुंद आम्नाय।।3।।

गच्छ सरस्वती गण कहा, बलात्कार शुभ मान्य।
चारितचक्री प्रथम गुरू, शांतिसागराचार्य।।4।।

उनके पट्टाचार्य गुरू, वीरसागराचार्य।
महाव्रत दातागुरू, नमूं उभय आचार्य।।5।।

छब्बीस सौ तेरह तमी, वीरजयंती वंद्य।
चैत्रशुक्ल तेरस तिथी, पूर्ण किया यह ग्रंथ।।6।।

अमृतवर्षाकारिणी, गौतमस्वामी वाणि।
अमृतपद देवे हमें, यह संकलिता वाणि।।7।।

जब तक जिनवर धर्म है, जग में सुखकर पूर्ण।
तब तक 'कृति' स्थायि हो, करे ज्ञानमति पूर्ण।।8।।

इति श्रीगौतमगणधरवाणी प्रशस्ति समाप्ता।

श्री गौतम स्वामी परिचय

गणिनी ज्ञानमती

णमो अरिहंताणं, णमो सिद्धाणं, णमो आइरियाणं।
णमो उवज्झायाणं, णमो लोए सव्व साहूणं।।

अर्थकर्ता भगवान महावीर

भावतोऽर्थकर्ता निरूप्यते—ज्ञानावरणादि-निश्चय-व्यवहारापाया-तिशयजातानन्तज्ञान-दर्शन-सुख-वीर्य-क्षायिक-सम्यक्त्व-दान-लाभ-भोगोपभोग-निश्चय-व्यवहार-प्राप्त्यतिशयभूत-नव-केवल-लब्धि-परिणतः।

एवंविधो महावीरोऽर्थकर्ता।

अब भाव की अपेक्षा अर्थकर्ता का निरूपण करते हैं—

ज्ञानावरणादि घातिया कर्मों के निश्चय-व्यवहाररूप विनाश कारणों की विशेषता से उत्पन्न हुए अनन्तज्ञान, दर्शन, सुख और वीर्य तथा क्षायिक-सम्यक्त्व, दान, लाभ, भोग और उपभोग की निश्चय-व्यवहाररूप प्राप्ति के अतिशय से प्राप्त हुई नौ केवललब्धियों से परिणत भगवान् महावीर ने भावश्रुत का उपदेश दिया। अर्थात् निश्चय और व्यवहार से अभेद-भेदरूप नौ लब्धियों से युक्त होकर भगवान् महावीर ने भावश्रुत का उपदेश दिया।

इस प्रकार भगवान् महावीर अर्थकर्ता हैं। (धवला पुस्तक-१, पृ. ६४)

ग्रंथकर्ता श्री गौतम स्वामी

तेण महावीरेण केवलणाणिणा कहिदत्थो तम्हि चेव काले तत्थेव खेत्ते खयोवसम-जणिद-चउरमल-बुद्धि-संपण्णेण बम्हणेण गोदम-गोत्तेण सयलदुस्सुहि-पारएण जीवाजीव-विसय-संदेह-विणासणट्ठमुव-गयवड्ढमाण-पाद-मूलेण इंदभूदिणावहारिदो।

इस प्रकार केवलज्ञान से विभूषित उन भगवान् महावीर के द्वारा कहे गये अर्थ को, उसी काल में और उसी क्षेत्र में क्षयोपशमविशेष से उत्पन्न हुए चार

प्रकार के निर्मल ज्ञान से युक्त, वर्ण से ब्राह्मण, गोतमगोत्री, संपूर्ण दुःश्रुति में पारंगत और जीव-अजीवविषयक संदेह को दूर करने के लिए श्री वर्द्धमान के पादमूल में उपस्थित हुए ऐसे इन्द्रभूति ने अवधारण किया।

(धवला पुस्तक-१, पृ. ६५)

पुणो तेणिंदभूदिणा भाव-सुद-पज्जय-परिणदेण बारहंगाणं चोद्दस-पुव्वाणं च गंथाणमेक्केण चेव मुहुत्तेण कमेण रयणा कदा। तदो भाव-सुदस्स अत्थ-पदाणं च तित्थयरो कत्ता। तित्थयरादो सुद-पज्जाएण गोदमो परिणदो त्ति दव्व-सुदस्स गोदमो कत्ता। तत्तो गंथ-रयणा जादेत्ति।

अनन्तर भावश्रुतरूप पर्याय से परिणत उन इन्द्रभूति ने बारह अंग और चौदह पूर्वरूप ग्रंथों की एक ही मुहूर्त में क्रम से रचना की है। अतः भावश्रुत और अर्थ-पदों के कर्ता तीर्थंकर हैं तथा तीर्थंकर के निमित्त से गौतम गणधर श्रुतपर्याय से परिणत हुए, इसलिए द्रव्यश्रुत के कर्ता गौतम गणधर हैं। इस तरह गौतम गणधर से ग्रंथ रचना हुई। (धवला पुस्तक-१, पृ. ६६)

अर्थकर्ता भगवान महावीर हैं

कत्तारा दुविहा—अत्थकत्तारो गंथकत्तारो चेदि। तत्थ अत्थकत्तारो भयवं महावीरो।

कर्ता दो प्रकार हैं—अर्थकर्ता और ग्रन्थकर्ता। उनमें अर्थकर्ता भगवान् महावीर हैं। (धवला पुस्तक-९, पृ. १०७)

ग्रंथकर्ता श्री गौतम स्वामी हैं, ऐसे श्री गौतम स्वामी की महिमा देखिए धवला ग्रंथ में-

संखित्तसद्दरयणमणंतत्थावगमहेदुभूदाणेगलिंगसंगयं बीजपदं णाम। तेसिमणेयाणं बीजपदाणं दुवालसंगप्पयाणमट्ठारस-सत्त-सयभास-कुभाससरूवाणं परूवओ अत्थकत्तारो णाम, बीजपदणिलीणत्थ-परूवयाणं दुवालसंगाणं कारओ गणहरभडारओ गंथकत्तारओ त्ति अब्भुवगमादो। बीजपदाणं वक्खाणओ त्ति वुत्तं होदि। किमट्ठं तस्स परूवणा कीरदे? गंथस्स पमाणत्तपदुप्पायणट्ठं। ण च राग-दोस-मोहोवहओ जहुत्तत्थपरूवओ, तत्थ सच्चवयणणियमाभावादो। तम्हा

तप्परूवणा कीरदे। तं जहा-पंचमहव्वयधारओ तिगुत्तिगुत्तो पंचसमिदो णट्ठट्ठमदो मुक्कसत्तभओ बीज-कोट्ठपदाणुसारि-संभिण्णसोदारत्तु-वलक्खिओ उक्कट्ठोहिणाणेण असंखेज्जलोगमेत्तकालम्मि तीदाणागद-वट्टमाणासेसपरमाणुपेरंतमुत्तिदव्वपज्जायाणं च पच्चक्खेण जाणंतओ तत्ततवलद्धीदो णीहारविवज्जिओ दित्ततवलद्धिगुणेण सव्वकालोववासो वि संतो सरीरजुज्जोइयदसदिसो सव्वोसहिलद्धिगुणेण सव्वोसहसरूवो अणंतबलादो करंगुलियाए तिहुवणचालणक्खमो अमियासवीलद्धिबलेण अंजलिपुडणिवदिदसयलाहारे अमियत्तणेण परिणमणक्खमो महातवगुणेण कप्परूक्खोवमो महाणसक्खीणलद्धिबलेण सगहत्थणिवदिदाहाराण-मक्खयभावुप्पायओ अघोरतवमाहप्पेण जीवाणं मण-वयण-कायगया-सेसदुत्थियत्तणिवारओ सयलविज्जाहि सेवियपादमूलो आयासचारण-गुणेण रक्खियासेसजीवणिवहो वायाए मणेण य सयलत्थसंपादणक्खमो अणिमादिअट्ठगुणेहि जियासेसदेवणिवहो तिहुवणजणजेट्ठओ परोवदेसेण विणा अक्खराणक्खरसरूवासेसभासंतरकुसलो समवसरणजणमेत्तरू-वधारित्तणेण अम्हम्हाणं भासाहि अम्हम्हाणं चेव कहदि त्ति सव्वेसिं पच्चउप्पायओ समवसरणजणसोदिंदिएसु सगमुहविणिग्गयाणेयभासाणं संकरेण पवेसस्स विणिवारओ गणहरदेवो गंथकत्तारो, अण्णहा गंथस्स पमाणत्तविरोहादो धम्मरसायणेण समोसरणजणपोसणाणुववत्तीदो। एत्थुववज्जंती गाहा-

बुद्धि-तव-विउवणोसह-रस-बल-अक्खीण-सुस्सरत्तादी।
ओहि-मणपज्जवेहि य हवंति गणवालया सहिया।।३८।।

संपहि वड्ढमाणतित्थगंथकत्तारो वुच्चदे-

पंचेव अत्थिकाया छज्जीवणिकाया महव्वया पंच।
अट्ठ य पवयणमादा सहेउओ बंध-मोक्खो य।।३९।।

को होदि त्ति सोहम्मिंदचालणादो जादसंदेहेण पंच-पंचसयंतेवासि-सहियभादुत्तिदयपरिवुदेण माणत्थंभदंसणेणेव पणट्ठमाणेण वड्ढमाणवि-सोहिणा वड्ढमाणजिणिंददंसणे वणट्ठासंखेज्जभवज्जियगरुवकम्मेण जिणिंदस्स तिपदाहिणं करिय पंचमुट्ठीए वंदिय हियएण जिणं झाइय

पडिवण्णसंजमेण विसोहिबलेण अंतोमुहुत्तस्स उप्पण्णासेसगणिं-दलक्खणेण उवलद्धजिणवयणविणिग्गयबीजपदेण गोदमगोत्तेण बम्हणेण इंदभूदिणा आयार-सूदयद-ट्ठाण-समवाय-वियाहपण्णत्ति-णाहधम्मकहोवासयज्झयणंतयडदस-अणुत्तरोववादियदस-पण्णवायरण-विवायसुत्त-दिट्ठिवादाणं सामाइय-चउवीसत्थय-वंदणा-पडिक्कमण-वइणइय-किदियम्म-दसवेयालि-उत्तरज्झयण-कप्पववहार-कप्पाकप्प-महाकप्प-पुंडरीय-महापुंडरीय-णिसिहियाणं चोद्दसपइण्णयाण-मंगबज्झाणं च सावणमासबहुलपक्खजुगादिपडिवयपुव्वदिवसे जेण रयणा कदा तेणिंदभूदि भडारओ वड्ढमाणजिणतित्थगंथकत्तारो। उत्तं च-

वासस्स पढममासे पढमे पक्खम्मि सावणे बहुले।
पाडिवदपुव्वदिवसे तित्थुप्पत्ती दु अभिजिम्मि।।४०।।

संक्षिप्त शब्द रचना से सहित व अनन्त अर्थों के ज्ञान के हेतुभूत अनेक चिन्हों से संयुक्त बीजपद कहलाता है। अठारह भाषा व सात सौ लघु भाषा स्वरूप द्वादशांगात्मक उन अनेक बीजपदों के प्ररूपक अर्थकर्ता हैं तथा बीजपदों में लीन अर्थ के प्ररूपक बारह अंगों के कर्ता गणधर भट्टारक ग्रंथकर्ता हैं, ऐसा स्वीकार किया गया है। अभिप्राय यह है कि बीजपदों के जो व्याख्याता हैं वे ग्रंथकर्ता कहलाते हैं।

शंका—उक्त कर्ता की प्ररूपणा किसलिए की जाती है ?

समाधान—ग्रंथ की प्रमाणता को बतलाने के लिए कर्ता की प्ररूपणा की जाती है। राग, द्वेष व मोह से युक्त जीव यथोक्त अर्थों का प्ररूपक नहीं हो सकता, क्योंकि उसमें सत्य वचन के नियम का अभाव है। इसी कारण उसकी प्ररूपणा की जाती है। वह इस प्रकार है—

पाँच महाव्रतों के धारक, तीन गुप्तियों से रक्षित, पाँच समितियों से युक्त, आठ मदों से रहित, सात भयों से मुक्त, बीज, कोष्ठ, पदानुसारी व सम्भिन्नश्रोतृत्व बुद्धियों से उपलक्षित, प्रत्यक्षभूत उत्कृष्ट अवधिज्ञान से असंख्यात लोक मात्र काल में अतीत, अनागत एवं वर्तमान परमाणु पर्यन्त समस्त मूर्त द्रव्य व उनकी पर्यायों को जानने वाले, तप्ततप लब्धि के प्रभाव से मल-मूत्र रहित, दीप्ततप लब्धि के बल से सर्वकाल उपवास युक्त होकर भी शरीर के तेज से

दशों दिशाओं को प्रकाशित करने वाले, सर्वौषधि लब्धि के निमित्त से समस्त औषधियों स्वरूप, अनन्त बल युक्त होने से हाथ की कनिष्ठ अंगुलि द्वारा तीनों लोकों को चलायमान करने में समर्थ, अमृतास्रव आदि ऋद्धियों के बल से हस्तपुट में गिरे हुए सब आहारों को अमृत स्वरूप से परिणमाने में समर्थ, महातप गुण से कल्पवृक्ष के समान, अक्षीणमहानस लब्धि के बल से अपने हाथों में गिरे हुए आहारों की अक्षयता के उत्पादक, अघोरतप ऋद्धि के माहात्म्य से जीवों के मन, वचन एवं कायगत समस्त कष्टों को दूर करने वाले, सम्पूर्ण विद्याओं के द्वारा सेवित चरणमूल से संयुक्त, आकाशचारण गुण से सब जीवसमूहों की रक्षा करने वाले, वचन एवं मन से समस्त पदार्थों के सम्पादन करने में समर्थ, अणिमादिक आठ गुणों के द्वारा सब देवसमूहों को जीतने वाले, तीनों लोकों के जनों में श्रेष्ठ, परोपदेश के बिना अक्षर व अनक्षररूप सब भाषाओं में कुशल, समवसरण में स्थित जन मात्र के रूप के धारी होने से 'हमारी-हमारी भाषाओं से हम-हमको ही कहते हैं' इस प्रकार सबको विश्वास कराने वाले तथा समवसरणस्थ जनों के कर्ण इन्द्रियों में अपने मुंह से निकली हुई अनेक भाषाओं के सम्मिश्रित प्रवेश के निवारक ऐसे गणधरदेव ग्रंथकर्ता हैं, क्योंकि ऐसे स्वरूप के बिना ग्रंथ की प्रमाणता का विरोध होने से धर्म-रसायन द्वारा समवसरण के जनों का पोषण बन नहीं सकता। यहाँ उपयुक्त गाथा—

गणधरदेव बुद्धि, तप, विक्रिया, औषध, रस, बल, अक्षीण, सुस्वरत्वादि ऋद्धियों तथा अवधि एवं मनःपर्यय ज्ञान से सहित होते हैं।।३८।।

अब वर्धमान जिनके तीर्थ में ग्रंथकर्ता को कहते हैं-

पाँच अस्तिकाय, छह जीवनिकाय, पाँच महाव्रत, आठ प्रवचनमाता अर्थात् पाँच समिति और तीन गुप्ति तथा सहेतुक बंध और मोक्ष।।३९।।

'उक्त पाँच अस्तिकायादिक क्या हैं ?' ऐसे सौधर्मेन्द्र के प्रश्न से संदेह को प्राप्त हुए पाँच सौ-पाँच सौ शिष्यों से सहित तीन भ्राताओं से वेष्टित, मानस्तंभ के देखने से ही मान से रहित हुए, वृद्धि को प्राप्त होने वाली विशुद्धि से संयुक्त, वर्धमान भगवान् के दर्शन करने पर असंख्यात भवों में अर्जित महान् कर्मों को नष्ट करने वाले, जिनेन्द्रदेव की तीन प्रदक्षिणा करके पाँच अंगों द्वारा भूमिस्पर्शपूर्वक वंदना करके एवं हृदय से जिन भगवान् का ध्यान कर संयम को प्राप्त हुए,

विशुद्धि के बल से मुहूर्त के भीतर उत्पन्न हुए समस्त गणधर के लक्षणों से संयुक्त तथा जिनेन्द्रमुख से निकले हुए बीजपदों के ज्ञान से सहित ऐसे गौतम गोत्र वाले इन्द्रभूति ब्राह्मण द्वारा चूँकि आचारांग, सूत्रकृतांग, स्थानांग, समवायांग, व्याख्याप्रज्ञप्तिअंग, ज्ञातृधर्मकथांग, उपासकाध्ययनांग, अन्तकृतदशांग, अनुत्तरोपपादिकदशांग, प्रश्नव्याकरणांग, विपाकसूत्रांग व दृष्टिवादांग, इन बारह अंगों की तथा सामायिक, चतुर्विंशतिस्तव, वंदना, प्रतिक्रमण, वैनयिक, कृतिकर्म, दशवैकालिक, उत्तराध्ययन, कल्पव्यवहार, कल्पाकल्प, महाकल्प, पुण्डरीक, महापुण्डरीक व निषिद्धिका, इन अंगबाह्य चौदह प्रकीर्णकों की श्रावण मास के कृष्ण पक्ष में युग के आदिम प्रतिपदा के पूर्व दिन में रचना की थी, अतएव इन्द्रभूति गणधरदेव भट्टारक वर्धमान तीर्थंकर जिनेन्द्रदेव के तीर्थ में ग्रंथकर्ता हुए।

कहा भी है—

वर्ष के प्रथम मास व प्रथम पक्ष में श्रावण कृष्ण प्रतिपदा के पूर्व दिन में अभिजित् नक्षत्र में तीर्थ की उत्पत्ति हुई[१]।।४०।।

इस ग्रंथ में णमोकारमंत्र व चत्तारि मंगल पाठ अनादि निधन हैं और सभी पाठ श्री गौतमस्वामी प्रणीत हैं। श्री गौतमस्वामी ३० वर्ष तक भगवान के समवसरण में रहे हैं। उन्होंने ही इन चैत्यभक्ति व प्रतिक्रमण पाठ को रचा है। ये ही पाठ यहाँ दिये गए हैं चैत्यभक्ति पूर्ण है व शेष पाठ प्रतिक्रमण पाठ से उद्धृत हैं।

१. धवला पुस्तक-९, पृ. १२७ से १३० तक

श्री गौतम स्वामी प्रणीत प्रतिक्रमण पाठ में परिवर्तन-परिवर्धन उचित नहीं है।

(१) करोम्यहं—आजकल कुछ साधु-साध्वियां "**कुर्वेऽहं**" क्रिया को पढ़ने लगे हैं किंतु मुझे यह संशोधन नहीं जँचा है अतः मैंने यहाँ "**करोम्यहं**" ऐसा आचार्य प्रणीत प्राचीनपाठ ही सर्वत्र रखा है।

सिद्धांतचक्रवर्ती श्रीवीरनंदि आचार्य ने आचारसार ग्रंथ में "**करोम्यहं**" पाठ ही लिया है। यथा-"**क्रियायामस्यां व्युत्सर्गं भक्तेरस्याः करोम्यहं**[१]।"

अनगार धर्मामृत में पाक्षिक प्रतिक्रमण के लक्षण की स्वोपज्ञटीका में "**करोम्यहं**" क्रिया का प्रयोग पंद्रह बार आया है। उदाहरण के लिये देखिये-

"**सर्वातिचारविशुद्ध्यर्थं पाक्षिकप्रतिक्रमणक्रियायां..... सिद्धभक्तिकायोत्सर्गं करोम्यहं**[२]।" इत्यादि।

क्रियाकलाप में देववंदना, दैवसिक प्रतिक्रमण, पाक्षिकप्रतिक्रमण एवं अन्य क्रियाओं की प्रयोगविधि में "**करोम्यहं**" पाठ ही उपलब्ध है।

चारित्रसार ग्रंथ में भी-"**चैत्यभक्तिकायोत्सर्गं करोमीति विज्ञाप्य** .....इत्यादि पाठों में "**करोमि**" क्रिया ही है। ऐसा ही सामायिक भाष्य ग्रंथ एवं प्रतिष्ठातिलक ग्रंथ में भी "**करोमि, करोम्यहं**" पाठ ही उपलब्ध हो रहे हैं। कुल मिलाकर सभी ग्रंथों में इस परस्मैपदी "**करोमि**" क्रिया ही उपलब्ध हो रही है पुनः इसे बदलकर "**कुर्वेऽहं**" पाठ क्यों रखा गया? यह विचारणीय है।

(२) "**णाणाणं दंसणाणं चरित्ताणं**' पाठ सामायिक दण्डक में है यहाँ 'तवाणं' पाठ बढ़ाया है सो उचित नहीं है देखिये प्रमाण-

"**णाणाणमित्यादि-ज्ञानदर्शनचारित्राणां सदा करोमि क्रियाकर्म। गुणानामानन्त्य-संभवेऽपि रत्नत्रयस्य प्राधान्येन मोक्षोपायभूतत्वात्तदेव स्तुतम्।**"

(क्रियाकलाप पृ. १४६)

इससे स्पष्ट है कि '**तवाणं**' पद मूल में नहीं है। टीकाकारों ने भी नहीं माना है।

(३) ऐसे "**कीरंतं पि ण समणुमणामि**" पाठ के स्थान पर-

"**अण्णं कंरंतं पि ण समणुमणामि**" पाठ श्री गौतमस्वामी की कृति में सुधारना सर्वथा अनुचित है।

१. आचारसार पृ. १९१।

२. अनगार धर्मामृत मूल संस्कृत अ. ९ पृ. ६५७।

(४) इसी प्रकार–

''**वंदामि रिट्ठणेमिं**'' पाठ ही थोस्सामि स्तव में सर्वत्र मान्य है।

श्रमणचर्या के प्रथम संस्करण में–

'**वंदाम्यरिट्ठणेमिं**' किया है। पुनः द्वितीय संस्करण में ''**वंदे अरिट्ठणेमिं**'' किया है।

इस परिवर्तन पाठ को पढ़ना उचित नहीं है।

(५) सामायिक भाष्य में चैत्यभक्ति की अंचलिका की टीका में देखिए–

''**अंचेमि अर्चामि। पूजेमि पूजयामि। वंदामि स्तौमि। णमंसामि नमस्यामि प्रणिपतामि।**'' (सामायिक भाष्य पृ. १७५)

टीकाकार ने भी प्राचीन पाठ ही लिया '**अंचेमि**' आदि। अतः–

श्रमणचर्या में पृ. १०२ पर–

''**अच्चेमि पुज्जेमि वंदामि णमस्सामि।**'' पाठ सुधारना कहाँ तक उचित है।

(६) इसी तरह ''**सल्लेहणामरणं**'' के अनंतर ''**तिदियं अब्भोवस्साणं चेदि**'' पाठ हटाकर ''**इच्चेदाणि चत्तारि सिक्खावदाणि**'' बढ़ाना उचित नहीं है। मूल पाठ जो क्रियाकलाप' आदि ग्रंथों में चला आ रहा है। उसे ही पढ़ना चाहिये।

(७) '**जो एदाइं वदाइं धरेइ सावया साावियाओ वा खुड्ढय खुड्ढियाओ वा अट्ठदहभवणवासिय-वाणविंतरजोइसियसोहम्मीसाणदेवीओ वदिक्कमित्तउवरिम-अण्णदरमहड्ढियासु देवेसु उववज्जंति।**'

जो श्रावक या श्राविका अथवा क्षुल्लक या क्षुल्लिका इन उपर्युक्त बारह व्रतों को या ग्यारह प्रतिमाओं को धारण करते हैं वे अठारह स्थान को, भवनवासी, वान व्यंतर, ज्योतिषी और सौधर्म–ईशान स्वर्ग की देवियों को छोड़कर ऊपर के स्वर्गों में से किसी भी स्वर्ग में महर्द्धिक देवों में उत्पन्न होते हैं।

सन् १९५८ में एक विद्वान ने कहा कि '**अट्ठदह**' पाठ का अर्थ समझ में नहीं आता है अतः इसके स्थान में '**णट्ठदेहा**' पाठ हो सकता है।'

कुछ पुस्तकों में उन्होंने ऐसा संशोधन करा दिया किन्तु उनसे कहा गया कि– पंडित जी! श्रावक–श्राविका और क्षुल्लक–क्षुल्लिका '**नष्टदेहाः**'–देहरहित तो होते नहीं हैं। अतः यह संशोधन मुझे संगत नहीं लगता है। चर्चा के प्रसंग में ऐसी बात आई——

'अठारह स्थान ऐसे ढूंढने चाहिये जहाँ व्रती नहीं जाता हो तथा उन अठारह स्थानों में ये भवनत्रिक और सौधर्म–ईशान की देवियाँ नहीं आनी चाहिए चूँकि इन्हें पृथक् से लिया है। तभी उमास्वामी श्रावकाचार के दो श्लोक स्मृतिपथ में आ गये, वे ये हैं——

सम्यक्त्वसंयुतः प्राणी, मिथ्यावासेन जायते।
द्वादशेषु च तिर्यक्षु, नारकेषु नपुँसके।।८८।।
स्त्रीत्वे च दुष्कृतात्पायु-दारिद्र्यादिकवर्जितः।
भवनत्रिषु षट्भूषु, तद्देवीषु न जायते।।८९।।

सम्यक्त्व से सहित जीव मिथ्यात्व के निम्नस्थानों में नहीं जाता है——

१. पृथ्वीकायिक २. जलकायिक ३. अग्निकायिक ४. वायुकायिक ५. वनस्पतिकायिक ६. दो इंद्रिय ७. तीन इंद्रिय ८. चार इंद्रिय ९. निगोद १०. असंज्ञीपंचेन्द्रिय ११. कुभोगभूमि और १२. म्लेच्छखंड, मिथ्यात्व के इन बारह स्थानों में उत्पन्न नहीं होता है। तथा १३. तिर्यचों में १४. नरकों में १५. नपुंसक में और १६. स्त्रीवेद में उत्पन्न नहीं होता है।

पुनः पापी, अल्पायु, दारिद्रादि से वर्जित रहता है। यह सम्यग्दृष्टी भवनत्रिकों में, प्रथम नरक से अतिरिक्त छह नरकभूमियों में व स्वर्ग की देवियों में भी नहीं जाता है।

चर्चा में यह बात और आई कि यहाँ प्रतिक्रमण में तो व्रतिक श्रावकों के लिए कथन है अतः व्रतीजन तो सुभोगभूमि और मनुष्य पर्याय में भी नहीं जाते हैं क्योंकि गाथा है कि——

अणुवदमहव्वदाइं ण लहइ देवाउगं मोत्तुं। (गोम्मटसार कर्मकांड)

अणुव्रती और महाव्रती तो देवायु के सिवाय अन्य किसी आयु का बंध ही नहीं कर सकता है। इसलिये उपर्युक्त १६ स्थानों में, १७. सुभोगभूमि और १८. मनुष्य इन दो स्थानों को मिला देने से अठारह स्थान हो जाते हैं। व्रतिक व क्षुल्लक–क्षुल्लिका इनमें नहीं जाते हैं।

ये अठारह स्थान आ. श्रीशिवसागरजी महाराज को भी बहुत ही संगत प्रतीत हुये थे। तब विद्वान द्वारा संशोधित पाठ 'णट्ठदेहा' हटा दिया गया था।

उसके बाद वह चर्चा वहीं समाप्त हो गई थी।

कुछ दिन पूर्व श्रमणचर्या में '**अट्ठदह**' पाठ को उलट कर '**दहअट्ठ**' पाठ लिया गया जिसका अर्थ यह निकाला गया–'दश प्रकार के भवनवासी और आठ प्रकार के वानव्यंतर। पुनः 'श्रमणचर्या' में छपा है–'**दह-अट्ठ-पंच**' जिसे भवनवासी, वानव्यंतर और ज्योतिषी देवों के भेदरूप से माना गया।

जो भी हो मेरी विचारधारा तो यही है कि यदि कुछ पाठ संशोधित भी करना है तो पुराने विद्वानों के समान उस मूलपाठ को न हटाकर टिप्पण में 'संभावित है' ऐसा लिखकर उसे देना चाहिए।

ऐसे ही एक पाठ परिवर्तन और है जो कि अतीव विचारणीय है–मूल पाठ है–**'से अभिमदजीवाजीवउवलद्धपुण्णपाव-आसवसंवरणिज्जरबंधमोक्खमहिकुसले।'**

अब इसे बदल कर ऐसा पाठ रखा गया है—**'से अभिमदजीवाजीवउवलद्ध-पुण्णपावआसवबंधसंवरणिज्जरमोक्खमहिकुसले।'**

मूलपाठ में नवतत्त्वों का क्रम यह था-जीव, अजीव, पुण्य, पाप, आस्रव, संवर, निर्जरा, बंध और मोक्ष।

परिवर्तित पाठ का क्रम ऐसा हो गया है जीव, अजीव, पुण्य, पाप, आस्रव, बंध, संवर, निर्जरा और मोक्ष।

विचार करने से यह समझ में आता है कि—इस मूलपाठ के क्रम के अनुसार ही कुंदकुंददेव ने समयसार में गाथा रखी है—

भूयत्थेणाभिगदा जीवाजीवा य पुण्णपावं च।
आसवसंवरणिज्जरबंधो मोक्खो य सम्मत्तं।।१३।।

और इसी गाथा के क्रम के अनुसार ही श्रीकुंदकुंददेव ने समयसार में अधिकार विभक्त किये हैं। जीवाजीवाधिकार के बाद पुण्य-पापाधिकार है पुनः आस्रव अधिकार, संवर अधिकार, निर्जरा अधिकार लेकर तब बंध अधिकार है इसके बाद मोक्ष अधिकार है।

(८) **क्रियाकलाप**	**पृ.**	**श्रमणचर्या**	**पृ.**
देवा वि तस्स पणमंति	**६६**	**देवा वि तं णमंसंति**	**४०**

प्रतिक्रमणग्रंथत्रयी में टीकाकार ने यही क्रियाकलाप वाला पाठ रखकर इसी की टीका की है। जैसे–

''**देवा वि तस्स पणमंति-देवा अपि तस्य प्रणमंति।**'' इस प्रकार अनेक संशोधन वर्तमान में किये जा रहे हैं किन्तु विचार करने की बात है कि इन टीकाकार प्रभाचंद्राचार्य तक तो यह प्राचीन पाठ ही प्रमाणभूत माना गया है और श्रीटीकाकार भी प्राकृत-संस्कृत व्याकरण व छंद शास्त्रादि के ज्ञाता अवश्य थे फिर भी उन्होंने यह पाठ नहीं बदला है। आजकल ऐसे ही अनेक संशोधन हुये हैं जो कि हमें इष्ट नहीं हैं।

श्री गौतमस्वामी प्रणीत प्रतिक्रमण पाठ में परिवर्तन-परिवर्धन अनुचित है।

क्र. सं.	(१)	(२)
(१) क्रियाकलाप (प्रकाशन-वी. नि. सं. २४६२) (सन् १९३६)	प्रतिष्ठापनसिद्धभक्तिकायोत्सर्गं करोम्यहम्। (पृ. ७०)	चरित्ताणं सदा करेमि किरियम्मं... (पृ. ८९)
(२) धर्मध्यान दीपक (प्रकाशन-वी. नि. सं. २४८३) (सन् १९५७)	सिद्धभक्तिकायोत्सर्गं करोम्यहम्। (पृ. २००)	चरित्ताणं सदा करेमि किरियम्मं... (पृ. २२४)
(३) नित्यभक्ति पाठ (प्रकाशन-वी. नि. सं. २४८८) (सन् १९६२)	सिद्धभक्तिकायोत्सर्गं करोम्यहम् (पृ. २११)	चरित्ताणं सदा करेमि किरियम्मं (पृ. २३०)
(४) यतिक्रियामंजरी (प्रकाशन-वी. नि. सं. २४८८) (सन् १९६२)	सिद्धभक्तिकायोत्सर्गं करोम्यहम्। (पृ. ११९)	चरित्ताणं सदा करेमि किरियम्मं (पृ. १४१)
(५) मुनिचर्या (प्रकाशन-वी. नि. सं. २५२१) (सन् १९९५)	सिद्धभक्तिकायोत्सर्गं करोम्यहं। (पृ. २४६)	चरित्ताणं सदा करेमि किरियम्मं (पृ. ८)
(६) श्रमणचर्या-प्रथम संस्करण (प्र.-वी. नि. सं. २५०६) (सन् १९८०)	कुर्वेऽहं (पृ. ९१, ९३)	चरित्ताणं सदा करेमि किरियम्मं (पृ. १०)
(७) श्रमणचर्या-द्वितीय संस्करण (प्रकाशन-वी. सं. २५१६) (सन् १९९०)	कुर्वेऽहम् (पृ. ९५)	चरित्ताणं तवाणं सदा करेमि..... (पृ. ९७)
(८) विमलभक्ति संग्रह (प्रकाशन-वी. सं. २५१५-१६) (सन् १९८९-९०)	कुर्वेऽहं (पृ. ३४७)	**चरित्ताणं सदा करेमि किरियम्मं** (पृ. ३७४)
(९) श्रमणाचार (प्रकाशन-वी. सं. २५१५) (सन् १९८९)	कुर्वेऽहं (पृ. ११४)	चरित्ताणं सदा करेमि किरियम्मं (पृ. १४५)
(१०) सुज्ञान श्रमणचर्या (प्रकाशन-वी. सं. २५३८) (सन् २०१२)	कुर्वेऽहं (पृ. २६२) करोम्यहं (पृ. २६७)	चरित्ताणं तवाणं सदा करेमि किरियम्मं (पृ. २६८)
(११) दिनचर्या (संकलनकर्ता-ब्र. प्रदीप शास्त्री 'पीयूष')	करोम्यहम् (पृ. ७९)	चरित्ताणं सदा करेमि किरियम्मं (पृ. ८०)

नोट–पाठकगण ध्यान दें–जिन पुस्तकों में श्री गौतमस्वामी प्रणीत प्रतिक्रमण पाठ में जो परिवर्तित, परिवर्धित पाठ हैं चार्ट में उनके नीचे अंडरलाईन हैं, जो अनुचित है अतः आप परिवर्तित एवं परिवर्धित पाठ न पढ़े। शुद्ध, प्राचीन पाठ ही पढ़ें।

श्री गौतमस्वामी प्रणीत प्रतिक्रमण पाठ में परिवर्तन-परिवर्धन अनुचित है।

(३)	(४)	(५)
कीरंतं पि ण समणुमणामि (पृ. ९०)	वंदामि रिट्ठणेमिं (पृ. ९०)	अंचेमि, पूजेमि, वंदामि, णमंसामि (पृ. ७४)
कीरंतं पि ण समणुमणामि (पृ. २२४)	वंदामि रिट्ठणेमिं (पृ. २२५)	अंचेमि, पूजेमि, वंदामि, णमंसामि (पृ. २०३)
कीरंतं पि ण समणुमणामि (पृ. २३०)	वंदामि रिट्ठणेमिं (पृ. २३१)	अंचेमि, पूजेमि, वंदामि, णमंसामि (पृ. २१३)
कीरतं वि ण समणुमणामि (पृ. १४२)	वंदामि रिट्ठणेमिं (पृ. १४२)	अंचेमि, पूजेमि, वंदामि, णमंसामि (पृ. १२२)
कीरंतं पि ण समणुमणामि (पृ. २९८)	वंदामि रिट्ठणेमिं (पृ. १०)	अंचेमि, पूजेमि, वंदामि, णमंसामि (पृ. २८२)
अण्णं करंतं पि ण समणुमणामि (पृ. ११६)	वंदाम्यरिट्ठणेमिं (पृ. ११)	अंचेमि, पूजेमि, वंदामि, णमंसामि (पृ. ९१)
अण्णं करंतं पि ण समणुमणामि (पृ. ९७)	वंदे अरिट्ठणेमिं (पृ. ९८)	अच्चेमि पुज्जेमि, वंदामि, णमस्सामि (पृ. १०२)
अण्णं करंतं पि ण समणुमणामि (पृ. ३४८)	वंदाम्यरिट्ठणेमिं (पृ. ३७५)	अंचेमि, पूजेमि, वंदामि, णमंसामि (पृ. ३५६)
अण्णं करंतं पि ण समणुमणामि (पृ. ११६)	वंदाम्यरिट्ठणेमिं (पृ. १४६)	अंचेमि, पूजेमि, वंदामि, णमंसामि (पृ. १२४)
अण्णं करंतं पि ण समणुमणामि (पृ. २५०)	वंदाम्यरिट्ठणेमिं (पृ. २६९)	अंचेमि, पूजेमि, वंदामि, णमंसामि (पृ. २४८)
कीरंतं पि, ण समणुमणामि (पृ. ८०)	वंदाम्यरिट्ठणेमिं (पृ. ८१)	अंचेमि, पूजेमि, वंदामि, णमंसामि (पृ. ७२)

श्री गौतमस्वामी प्रणीत प्रतिक्रमण पाठ में परिवर्तन-परिवर्धन अनुचित है।

(६)	(७)	(८)
पच्छिमसल्लेहणामरणं, तिदियं अब्भोवस्साणं चेदि (पृ. १०७)	अट्ठदहभवणवासिय.... (पृ. १०८)	देवा वि तस्स पणमंति (पृ. १११)
पच्छिमसल्लेहणामरणं, तिदियं अब्भोवस्साणं चेदि (पृ. २४९)	अट्ठदहभवणवासिय (पृ. २५०)	देवा वि तस्स पणमंति (पृ. १९४)
पच्छिमसल्लेहणामरणं, तिदियं अब्भोवस्साणं चेदि (पृ. २५१)	अट्ठदहभवणवासिय..... (पृ. २५२)	देवा वि तस्स पणमंति (पृ. १८८)
पच्छिम-सल्लेहणामरणं, तिदियं अब्भोवस्साणं चेदि (पृ. १६१)	अट्ठदहभवणवासिय.... (पृ. १६४)	देवा वि तस्स पणमंति (पृ. १६८)
पच्छिमसल्लेहणामरणं, तिदियं अब्भोवस्साणं चेदि (पृ. ३९४)	अट्ठदहभवणवासिय... (पृ. ३९८)	देवा वि तस्स पणमंति (पृ. ५०)
पच्छिम-सल्लेहणामरणं चेदि। इच्चेदाणि चत्तारि सिक्खावदाणि (पृ. १९२)	दह-अट्ठ-पंचभवणवासिय.... (पृ. १९३)	देवा वि तं णमंसंति.... (पृ. ४०)
पच्छिमसल्लेहणामरणं चेदि, इच्छेदाणि चत्तारि सिक्खावदाणि (पृ. १५९)	दहअट्ठपंचभवणवासिय... (पृ. १६०)	देवा वि तं णमस्संति (पृ. १६४)
पच्छिमसल्लेहणामरणं, इच्चेदाणि चत्तारि सिक्खावदाणि (पृ. ४१७)	दहअट्ठपंचभवणवासिय..... (पृ. ४१८)	देवा वि तं णमंसंति (पृ. ३०)
पच्छिमसल्लेहणामरणं, इच्चेदाणि चत्तारि सिक्खावदाणि (पृ. १९२)	दहअट्ठपंचभवणवासिय.... (पृ. १९३)	देवा वि तं णमंसंति (पृ. ४०)
पच्छिम-सल्लेहणामरणं, इच्चेदाणि चत्तारि सिक्खावदाणि (पृ. २९९)	दहअट्ठपंचभवणवासिय..... (पृ. २९९)	देवा वि तं णमंस्संति (पृ. २८)
पच्छिम-सल्लेहणामरणं से ..... (पृ. १०४)	अट्ठदहभवणवासिय.... (पृ. १०५)	देवा वि तस्स पणमंति (पृ. १०८)

श्री गौतम स्वामी की मंगल आरती

रचयित्री–प्रज्ञाश्रमणी आर्यिका चंदनामती

ॐ जय गौतम स्वामी, स्वामी जय गणधर स्वामी।
द्वादशांग के कर्त्ता, मनपर्ययज्ञानी।। ॐ जय.।।
तीर्थंकर महावीर के, शिष्य प्रमुख गणधर। स्वामी.....
इन्द्रभूति गौतम यह, नाम मिला सुखकर ।।ॐ जय.।।1।।
श्रावण कुष्णा एकम, गणधर पद पाया। स्वामी .....
तीर्थंकर महावीर प्रभू ने, तुमको अपनाया।।ॐ जय.।।2।।
दिव्यध्वनि सुन प्रभु की, श्रुत रचना कर दी। स्वामी....
द्वादशांग से जग में, श्रुतसरिता भर दी।।ॐ जय.।।3।।
अंग पूर्व श्रुत अंश आज भी, है उपलब्ध यहाँ। स्वामी....
चतुरनुयोगों में निबद्ध वह, ज्ञान प्रसिद्ध कहा।।ॐ जय.।।4।।
गणधर गुरु की आरति, ऋद्धि–सिद्धि देवे। स्वामी.....
पुनः ''चंदनामती'' ज्ञाननिधि, सुख संपति लेवें।। ॐ जय.।।5।।

भजन

रचयित्री–प्रज्ञाश्रमणी आर्यिका चंदनामती

तर्ज–जन्म मानव का पाया है.....

गौतम गणधर की वाणी सुनो,
ज्ञान अमृत के स्वादी बनो।
वीर प्रभु दिव्यध्वनि को सुनो,
अपने आतम में उसको गुणो।।टेक.।।
आज हम सबका यह पुण्य है, पाया धरती पे नर जन्म है।
इसमें जिन भक्ति ही मुख्य है, गुरु की वाणी दे शिव सौख्य है।
वीर वाणी का अमृत चखो,
गुरु गौतम के श्रुत को सुनो।। गौतम.।।1।।
आयुष्मन्तों ! सुना मैंने है, ये वचन गणधर स्वामी कहें।
मुनि–श्रावक ये दो धर्म हैं, शक्तिसम इनका पालन करें।।
सुदं मे आउस्संतो सुनो,
श्रुत का चिन्तन करो औ गुनो।।गौतम.।।2।।
गणिनी श्री ज्ञानमती माता ने, गणधर वाणी बताई हमें।
उसको प्रतिदिन पढ़ें हम सभी, ''चंदनामति'' अमर हो कृती।।
वीर प्रभु के चरण में नमो,
गुरु गौतम के भी पद नमो।।गौतम.।।3।।